२४९
कहानी

मेरी प्रिय कहानियां \ अमृता प्रीतम

अमृता प्रीतम ने
साहित्य की विभिन्न विधाओं में अनेक प्रशंसित
रचनाएं दी हैं
और उन सबका अलग वैशिष्ट्य है
अपनी कविताओं की भांति
अमृता प्रीतम की कहानियों और उपन्यासों में भी
नारी की पीड़ा अपनी पूरी गहराई से व्यक्त हुई है
उनकी कहानियां जीवन और प्रेम के प्रति
नारी के दृष्टिकोण का
एक तरह से प्रतिनिधित्व करती है
गहन अनुभूतियों से भरे
उनके पात्रों में
यथार्थ जीवन की धड़कनें महसूस की जा सकती हैं
इन कहानियों के कथानक तो भिन्न हैं ही
अभिव्यक्ति, शैली और उपमाएं भी
एकदम भिन्न और नारीत्व से ओत-प्रोत हैं
ये रचनाएं साहित्य की अमूल्य निधि हैं

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६

अमृता प्रीतम

२४०
कहानी

मेरी प्रिय कहानियाँ

७३२८

पहला संस्करण ■ १९७१ ■ मूल्य पांच रुपये

मेरी प्रिय कहानियां ■ कहानी-संकलन
■ अमृता प्रीतम ©
■ राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

२४०
कहानी

८३२८
१२।४।८७

भूमिका

हर कहानी का एक मुख्य पात्र होता है, और जो कोई उसको मुख्य पात्र बनाने का कारण बनता है, चाहे वह उसका महबूब हो, और चाहे उसका माहौल, वह उस कहानी का दूसरा पात्र होता है। कहानी की राह से गुज़रते लोग या हादसे उन पात्रों के चलने, बैठने और देखने के लिए कहानी-महल की सीढ़ियां, चबूतरे और खिड़कियां कहे जा सकते हैं। पर मैं सोचती हूं, हर कहानी का एक तीसरा पात्र भी होता है। कहानी लिखने वाले को मैं कहानी का तीसरा पात्र नहीं कह सकती—रचना की घड़ी वह घड़ी होती है जब कहानी लिखने वाला कहानी के पात्र से अलहदा नहीं रह जाता—वह अपने पात्र का मन अपनी छाती में डाल लेता है और अपने पात्र के आंसू अपनी आंखों में। कहानी का तीसरा अहम पात्र उसका पाठक होता है, जो उस कहानी को पहली बार लफ़्ज़ों में से उभरते हुए देखता है और उसके वजूद की गवाही देता है, और चाहे वह भी पात्र के मन को अपनी छाती में धड़कते हुए सुन सकता है, पात्र के आंसू अपनी आंखों से पोंछ सकता है, पर फिर भी उसका अपना अस्तित्व इतना-सा अलग ज़रूर रहता है कि उसे कहानी का तीसरा पात्र कहा जा सकता है।

आप—सभी पढ़ने वाले—मेरी हर कहानी के तीसरे पात्र हैं। किसी एक कहानी को दूसरी से तरजीह देने का हक़ आपका सुरक्षित है। सोच का सामान, तजुर्बे की अमीरी, और ज़िन्दगी को देखने हर एक की अपनी-अपनी होती है। कारण अलग-अलग होते हैं, इसलिए पसन्द भी

अलग-अलग हो गए हैं। अगर [illegible] आपको मुश्किल हो, मैं केवल यह विश्वास दिला सकती हूं कि मैंने अपनी लिखी हुई कहानियों में से यह जिन कहानियों का अनुवाद करने के लिए चुनाव किया है, वह एक लेखक की हैसियत से नहीं, एक पाठक की हैसियत से किया है। आपकी तरह — इन कहानियों के शौकीन पाठक की हैसियत से।

इस चुनाव के कारण बता सकती हूं — कुछ कहानियां मुहब्बत और जिन्दगी की ओर औरत के नुक्ता नजर की नुमाइन्दगी करती हैं। दर्द एक-सा है पर हर कहानी की औरत अलग-अलग श्रेणी की है, ना किसीका तजुर्बा किसीके साथ मिलता है ना नुक्ता नजर। यही भिन्नता और यही स्पष्टता इस चुनाव का कारण है।

'जंगली बूटी' की अंगूरी उस छोटे-से और पिछड़े हुए गांव की जन्मी-पली है, जहां औरत को संस्कारों ने और रस्म-रीति ने स्वतन्त्र होकर कभी मुहब्बत करने का ख्याल नहीं आया। यहां तक कि उनका विश्वास यह बन गया है कि यदि किसी अनजान लड़की को किसी मर्द से प्यार हो जाता है तो इसका मतलब है कि उस मर्द ने पान में या किसी मिठाई में डालकर कोई जंगली बूटी उसको खिला दी होगी, जिसके असर से उसमें मुहब्बत का पागलपन आ गया। और इस विश्वास में जीती और हंसती-खेलती अंगूरी के मन में जब मुहब्बत की पहली कसक पड़ती है, और वह बावरी होकर जब कसम खाने लगती है कि उसने कभी किसीके हाथों मिठाई नहीं खाई, न कभी पान खाया है, तब उसके भोले दर्द के सामने सारी समझदारियां सिर नीचा कर लेती हैं…।

'गुलियाना का एक खत' एक चेतन औरत का दर्द है। उसके सपने जितने नाज़ुक हैं उनकी चोट उतनी ही तीखी है। उसके मन में एक घर की बहुत सादा और कदीमी लालसा भी है और उस घर की कल्पना भी है जिसका दरवाज़ा सितारों की चाबियों से खोला जाए…

'करमांवाली' दिल की दौलत के एवज़ में दिल की जो दौलत मांगती है उसमें उसे कोई भी कमी कबूल नहीं। उसका मन सुच्चे-अछूते लिबास की तरह है जो पहली बार किसीने अपने अंग लगाना है, पर उसका पति, उससे पहले किसी और औरत से मुहब्बत कर चुका है, उसे उस पहरन

…ी तरह लगता है जिसे अंग लगाते हुए उसे महसूस होता है, वह किसीका …तरन पहन रही है···

'छमक छल्लो' गुरबत की झकझोरी हुई वह लड़की है जिसकी अपनी …ी मुसकराहट उसके नाजुक बदन पर चाबुक की तरह लग जाती है। और मुसकराहट की कीमत से खरीदी हुई मांस की डली जब घर की हंडिया में भूनी जाती है तब उसे लगता है चूल्हे पर उसकी मुसकराहट भूनी जा रही है···

'अमाकड़ी' के पास मुहब्बत का जहर है। उसे प्यार करने वाला जब कहीं विवाह करता है, सोचता है, वक्त पाकर अमाकड़ी का जहर उतर जाएगा। विवाह जैसे जहर को उतारने वाला एक टीका है। पर···

'एक रूमाल : एक अंगूठी : एक छलनी' की बन्ती अपने महबूब के दिए हुए रूमाल को जब अपने बच्चे के सिर पर बांधकर देखती है, उसे लगता है उसका बच्चा देखते-देखते पच्चीस साल का हो गया है और वह खुद अभी मुश्किल से बीस साल की है···इस कहानी का बन्ती वह और साम की वह दोस्ती है, जो अपने बदन से रिश्तों का बोझ उतारकर पहली बार एक-दूसरे को केवल इन्सानी दर्द के रूप में देखती है···

आगे की कहानियों में मर्द-मन के कुछ पहलू हैं। 'धुआं और गाट' में एक ऐसा हादसा है जो एक सोचवान मर्द को, एक मासूम प्यार से पूर्ति पाते हुए भी, सोच में डाल देता है कि कुछ पल की पूर्ति को बरसों की पूर्ति बनाना शायद इस तरह है जैसे हवा-नाकिये में जंगल की खुली हवा को भर कर शहरों की कोयलों के धुए में और जंग की बारूदों से भरी हुई फिज़ा में ले जाना···अहसास का तेज बहाव, और चिन्तन की सहनशीलता इस कहानी की कसक है···

'लाल मिर्च' कहानी के यह नसीब है कि उसके पात्र की बेबसी कहानी की ताकत है। बरसों बाद इस कहानी को पढ़ते हुए मुझे वही अहसास हुआ है जो इसे लिखने के वक्त हुआ था। कहानी के आखिर में पढ़ने वाले से, कहानी के पात्र की तरह, जब सामने देखा नहीं जाता, तब कहानी अपनी सफलता पर मुस्करा देती है। यही मुस्कराहट इस कहानी की टीस है···

'बू' कहानी में एक मर्द की मुहब्बत और जिन्दगी की जरूरत आपस

कि उस वक़्त लगता जाता है कि उसका [illegible] की
सुराही के शीशे में भर जाता है···

'मैं सब जानता हूं' कहानी के पात्र [illegible] इस कहानी का दर्द है, जो [illegible] जिन्दगी की [illegible] की एक नई शक्ल में देखकर पैदा होती है। इन्सान जिन्दगी को अक्सर एक ही [illegible] होकर एक ही कोण से देखकर समझता है कि उसे जिन्दगी का सब कुछ पता चल गया है, पर···

'एक लड़की : एक जाम' का दर्द इसलिए अलग है कि उसके कलाकार नुमेश की एक जाम से वफ़ा उस वक़्त उसे आजमाना चाहती है, जिस वक़्त उसका यह इतकाद बन गया है कि हर लड़की को शराब के एक प्याले की तरह पिया और फिर एक प्याले के बाद दूसरा प्याला भर लिया। "मेरी ज़िन्दगी बहुत तल्ख़ है, बहुत गर्म, तुम पी नहीं सकोगी" जब कोई किसी से यह कहे और कोई आगे से जवाब दे "फूंक-फूंक कर पी लूंगी बाबू !" तब बनी हुई कहानी टूट जाती है और टूटी हुई कहानी बन जाती है···

'एक गीत का सृजन' एक रचनात्मक अमल का वर्णन है। आग की लकीर को लफ़्ज़ों में पकड़ने की कोशिश है···

और आगे की कहानियां···पहली कहानियों का दर्द एक आवाज़ बन सकता है, पर इन कहानियों का दर्द एक गूंगे का दर्द है।

'पांच बहनें' औरत जात के उस गूंगे दर्द की कहानी है, जिसे यह गूंगापन चाहे मजहब और इखलाक की पुरातन कीमतों को स्वीकार करने से नसीब हुआ है, और चाहे उन कीमतों को अस्वीकार करने में असफल यत्न से।

'उधड़ी हुई कहानियां' मध्य प्रदेश के बहुत पिछड़े हुए इलाके की कहानी है जहां अब भी यह विश्वास है कि अगर किसी औरत के घर दो बच्चे एक साथ पैदा होते हैं तो उनमें से एक बच्चा ज़रूर पाप का बच्चा है। औरत ने ज़रूर एक ही दिन दो मर्दों का संग किया होगा, इसलिए दो बच्चे पैदा हुए···

'अजनबी' में एक विकारग्रस्त पुरुष की दशा दिखाई गई है। आचार-

विचारों के बीच रास्ता ढूंढ़ते-ढूंढ़ते जिसका अपनापन भी आता है। 'एक दुश्मन' एक तर्कशील मनुष्य की संवेदना को जाहिर करती है। सहज 'होना' जब असहज या असंभव हो तो दुख जैसा शोर कर टूटता है उसमें भी एक खामोशी होती है। 'ए रॉटन स्टोरी' गुदड़ियों पर पड़े फ़कीर की तरह असहाय और बेचारगी के मनोरथ को दर्शाती है।

जगत में आगे होकर हादसे के बीच से गुजरना भी, और दूर खड़े होकर उस हादसे को देखना भी एक अजीब तजुरबा है। कहानी का लेखक जब कहानी लिख रहा होता है, उस हादसे से गुजर रहा होता है, और जब पाठक उसे पढ़ रहा होता है, तब उस हादसे को देख रहा होता है। इन कहानियों का चुनाव करते हुए मैं इनसे गुजर नहीं रही हूं। इसलिए, मैं आपकी तरह—हर पाठक की तरह—इस वक्त इस हर कहानी का तीसरा पात्र हूं।

—अमृता प्रीतम

६३२८
१२।५।७६

है इस तरह [illegible] जाती है कि उसका [illegible] सामने और उस की गुनाहों के शीशों में भर जाता है…

'मैं तय जानता हूं' कहानी में [illegible] सैनिक और उस फौजी की कहानी का दर्द है, जो फौजियों की जिन्दगी की [illegible] एक नहीं [illegible] में बेगानापन पैदा होता है। इन्सान जिन्दगी और [illegible] को एक ही कोण से देखकर समझता है कि उसे जिन्दगी का मन पूरा पता लग गया है, पर…

'एक कहानी : एक जाम' का दर्द इसलिए अलग है कि उसके कलाकार सुमेर को एक जाम से बना उस वक्त उसे आजमाना चाहती है, जिस वक्त उसका यह व्यवहार बन गया है कि हर कहानी को शराब के एक प्याले की तरह पिया और फिर एक प्याले के बाद दूसरा प्याला भर लिया। "मेरी जिन्दगी बहुत तल्ख है, बहुत गर्म, तुम पी नहीं सकोगी" जब कोई किसी से यह कहे और कोई आगे से जवाब दे "फूंक-फूंक कर पी लूंगी बाबू!" तब बनी हुई कहानी टूट जाती है और टूटी हुई कहानी बन जाती है…

'एक गीत का सृजन' एक रचनात्मक अमल का वर्णन है। आग की लकीर को लफ्जों में पकड़ने की कोशिश है…

और आगे की कहानियां…पहली कहानियों का दर्द एक आवाज बन सकता है, पर इन कहानियों का दर्द एक गूंगे का दर्द है।

'पांच बहनें' औरत जात के उस गूंगे दर्द की कहानी है, जिसे यह गूंगापन चाहे मजहब और इखलाक की पुरातन कीमतों को स्वीकार करने से नसीब हुआ है, और चाहे उन कीमतों को अस्वीकार करने में असफल यत्न से।

'उधड़ी हुई कहानियां' मध्य प्रदेश के बहुत पिछड़े हुए इलाके की कहानी है जहां अब भी यह विश्वास है कि अगर किसी औरत के घर दो बच्चे एक साथ पैदा होते हैं तो उनमें से एक बच्चा जरूर पाप का बच्चा है। औरत ने जरूर एक ही दिन दो मर्दों का संग किया होगा, इसलिए दो बच्चे पैदा हुए…

'अजनबी' में एक विकारग्रस्त पुरुष की दशा दिखाई गई है। आचार-

विचारों के बीच रास्ता ढूंढते-ढूंढते जिसका अपनापन खो जाता है। 'एक दुःखान्त' एक तर्कशील मनुष्य की संवेदना को जाहिर करती है। सहज 'होना' जब असहज या असंभव हो तो दुःख जैसा शोर कर टूटता है उसमें भी एक खामोशी होती है। 'ए रॉटन स्टोरी' गुदड़ियों पर कढ़े कसीदे की तरह असहाय और बेचारों के मनोरथ को दर्शाती है।

असल में आगे होकर हादसे के बीच से गुजरना भी, और दूर खड़े होकर उस हादसे को देखना भी एक अजीब तजुरबा है। कहानी का लेखक जब कहानी लिख रहा होता है, उस हादसे से गुजर रहा होता है, और जब वक्त पाकर उसे पढ़ रहा होता है, तब उस हादसे को देख रहा होता है। इन कहानियों का चुनाव करते हुए मैं इनसे गुजर नहीं रही हूं। इसलिए, मैं आपकी तरह—हर पाठक की तरह—इस वक्त इस हर कहानी का तीसरा पात्र हूं।

—अमृता प्रीतम

श्री ... (पुस्तकालय)

श्री मुक्ति नागरी ...
क्रमांक 10326
दिनांक 1/5/58

क्रम

जंगली बूटी	६
गुलियाना का एक खत	१६
करमावाली	२८
छमक छल्लो	३५
अमावड़ी	४७
एक रूमाल : एक अंगूठी : एक छलनी	५६
धुआं और राख	६६
लाल मिर्च	७७
बू	८४
मैं सब जानता हूं	६३
एक लड़की : एक जाम	१०४
एक गीत का सृजन	१११
पांच बहनें	११६
उधड़ी हुई कहानियां	१३१
अजनबी	१३८
एक दुखान्त	१४८
ए रॉटिन स्टोरी	१५७

उस प्रिय कहानी के नाम
जो इस पुस्तक में नहीं है

जंगली बूटी

अगूरी, मेरे पड़ौसियों के पड़ौसियों के पड़ौसियों के घर, उनके बड़े ही पुराने नौकर की बिल्कुल नई बीवी है। एक तो नई इस बात से कि वह अपने पति की दूसरी बीवी है, सो उसका पति 'दुहाजू' हुआ। जू का मतलब अगर 'जून' हो तो इसका पूरा मतलब निकला 'दूसरी जून में पड़ा हुआ आदमी', यानी दूसरे विवाह की जून में, और अगूरी क्योंकि अभी विवाह की पहली जून में ही है, यानी पहली विवाह की जून में, इसलिए नई हुई। और दूसरे वह इस बात से भी नई है कि उसका गौना आए अभी जितने महीने हुए हैं, वे सारे महीने मिलकर भी एक साल नहीं बनेंगे।

पांच-छः साल हुए, प्रभाती जब अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपनी पहली पत्नी की क्रिया करने के लिए अपने गांव गया था, तो कहते हैं कि क्रिया वाले दिन इस अगूरी के बाप ने उसका अंगोछा निचोड़ दिया था। किसी भी मर्द का यह अंगोछा भले ही अपनी पत्नी की मौत पर आंसुओं से नहीं भीगा होता, चौथे दिन या क्रिया के दिन नहाकर बदन पोंछने के बाद वह अंगोछा पानी में ही भीगा होता है, पर इस साधारण-सी गांव की रस्म से किसी और लड़की का बाप उठकर जब यह अंगोछा निचोड़ देता है तो जैसे वह कह रहा होता है—"उस मरने वाली की जगह मैं तुम्हें अपनी बेटी देता हूं और अब तुम्हें रोने की जरूरत नहीं, मैंने तुम्हारा आंसुओं से भीगा हुआ अंगोछा भी सुखा दिया है।"

इस तरह प्रभाती का इस अगूरी के साथ दूसरा विवाह हो गया था।

पर एक तो अंगूरी अभी आयु की बहुत छोटी थी और दूसरे अंगूरी की मां [illegible] के [illegible] पड़ी हुई थी। [illegible] पांच सालों तक [illegible] थी। [illegible] बीत गए थे। और इस साल जब प्रभाती अपने मालिकों से छुट्टी लेकर अपने गांव गौना लेने गया था तो अपने मालिकों को कह गया था कि या तो वह अपनी बहू को भी साथ लाएगा और शहर में अपने साथ रखेगा, और या फिर वह भी गांव से नहीं लौटेगा। मालिक पहले तो दलील करने लगे कि एक प्रभाती की जगह अपनी रसोई में से दो जनों की रोटी नहीं देना चाहते थे। पर जब प्रभाती ने यह बात कही कि वह कोठरी के पीछे वाली कच्ची जगह को पोत कर, अपना अलग चूल्हा बनाएगी, अपना पकाएगी, अपना खाएगी, तो उसके मालिक यह बात मान गए थे। सो अंगूरी शहर आ गई थी। चाहे अंगूरी ने शहर आकर कुछ दिन मुहल्ले के मर्दों से तो क्या औरतों से भी घूंघट न उठाया था, पर फिर धीरे-धीरे उसका घूंघट झीना हो गया था। वह पैरों में चांदी की झांजरें पहनकर छनक-छनक करती मुहल्ले की रौनक बन गई थी। एक झांजर उसके पांवों में पहनी होती, एक उसकी हंसी में। चाहे वह दिन का अधिकतर हिस्सा अपनी कोठरी में ही रहती थी पर जब भी बाहर निकलती, एक रौनक उसके पांवों के साथ-साथ चलती थी।

"यह क्या पहना है अंगूरी ?"

"यह तो मेरे पैरों की छैल चूड़ी है।"

"और यह उंगलियों में ?"

"यह तो बिछुआ है।"

"और यह बांहों में ?"

"यह तो पछेला है।"

"और माथे पर ?"

"आलीबंद कहते हैं इसे।"

[illegible]ाज तुमने कमर में कुछ नहीं पहना ?"

[illegible]ड़ी बहुत भारी लगती है, कल को पहनूंगी। आज तो मैंने तौ[illegible]

[illegible]ा। उसका टांका टूट गया है। कल सहर में जाऊंगी, टांक[illegible]

भी गढ़ाऊंगी और नाक की कील भी लाऊंगी। मेरी नाक को नकसा भी था, इत्ता बड़ा, मेरी सास ने दिया नहीं।"

इस तरह अंगूरी अपने चांदी के गहने एक मड़क से पहनती थी, एक मड़क से दिखाती थी।

पीछे जब मौसम फिरा था, अंगूरी का अपनी छोटी कोठरी में दम घुटने लगा था। वह बहुत बार मेरे घर के सामने आ बैठती थी। मेरे घर के आगे नीम के बड़े-बड़े पेड़ हैं, और इन पेड़ों के पास जरा ऊंची जगह पर एक पुराना कुआं है। चाहे मुहल्ले का कोई भी आदमी इस कुएं से पानी नहीं भरता, पर इसके पार एक सरकारी सड़क बन रही है और उस सड़क के मजदूर कई बार इस कुएं को चला लेते हैं जिससे कुएं के गिर्द अक्सर पानी गिरा होता है और यह जगह बड़ी ठण्डी रहती है।

"क्या पढ़ती हो बीवी जी?" एक दिन अंगूरी जब आई, मैं नीम के पेड़ों के नीचे बैठकर एक किताब पढ़ रही थी।

"तुम पढ़ोगी?"

"मेरे को पढ़ना नहीं आता।"

"सीख लो।"

"ना।"

"क्यों?"

"औरतों को पाप लगता है पढ़ने से।"

"औरत को पाप लगता है? मर्द को नहीं लगता?"

"ना, मर्द को नहीं लगता?"

"यह तुम्हें किसने कहा है?"

"मैं जानती हूं।"

"फिर मैं तो पढ़ती हूं। मुझे पाप लगेगा?"

"सहर की औरत को पाप नहीं लगता। गांव की औरत को पाप लगता है।"

मैं भी हंस पड़ी और अंगूरी भी। अंगूरी ने जो कुछ सीखा-सुना हुआ था, उसमें उसे कोई शंका नहीं थी, इसलिए मैंने उससे कुछ न कहा। वह अगर हंसती-खेलती अपनी जिन्दगी के दायरे में सुखी रह सकती थी तो

उसके लिए यही ठीक था। मैंने अंगूरी के मुंह की ओर ध्यान लगाकर देखने लगी। मेरे सामने रंग में आटे बदन का मांस गुंधा हुआ था। कहते हैं—औरत आटे की लोई होती है। पर शहरों के बदन का मांस उस ढीले आटे की तरह होता है जिसकी रोटी कभी भी गोल नहीं बनती, और गांवों के बदन का मांस बिल्कुल खमीरे के आटे जैसा, जिसे बेलने से फैलाया नहीं जा सकता। सिर्फ किसी-किसी बदन का मांस इतना सख्त गुंधा होता है कि रोटी तो क्या चाहे पूरियां बेल लो।... मैं अंगूरी के मुंह की ओर देखती रही, अंगूरी की छाती की ओर, अंगूरी की पिंडलियों की ओर... वह इतने सख्त मैदे की तरह गुंधी हुई थी कि जिससे मठरियां तली जा सकती थीं और मैंने इस अंगूरी का प्रभाती भी देखा हुआ था, ठिगने कद का, ढलके हुए मुंह का, कसोरे जैसा। और फिर अंगूरी के रूप की ओर देखकर मुझे उसके खाविंद के बारे में एक अजीब तुलना सूझी कि प्रभाती असल में आटे की इस घनी गुंथी लोई को पकाकर खाने का हकदार नहीं—वह इस लोई को ढककर रखने वाला कठवत है।...इस तुलना से मुझे खुद ही हंसी आ गई। पर मैं अंगूरी को इस तुलना का आभास नहीं देना चाहती थी। इसलिए उससे मैं उसके गांव की छोटी-छोटी बातें करने लगी।

मां-बाप की, बहिन-भाइयों की, और खेतों-खलिहानों की बातें करते हुए मैंने उससे पूछा, "अंगूरी, तुम्हारे गांव में शादी कैसे होती है?"

"लड़की छोटी-सी होती है, पांच-सात साल की, जब वह किसीके पांव पूज लेती है।"

"कैसे पूजती है पांव?"

"लड़की का बाप जाता है, फूलों की एक थाली ले जाता है, साथ में रुपये, और लड़के के आगे रख देता है।"

"यह तो एक तरह से बाप ने पांव पूज लिए। लड़की ने कैसे पूजे?"

"लड़की की तरफ से तो पूजे।"

"पर लड़की ने तो उसे देखा भी नहीं?"

"लड़कियां नहीं देखतीं।"

"लड़कियां अपने होने वाले खाविंद को नहीं देखतीं?"

"ना।"

"कोई भी लड़की नहीं देखती ?"

"ना।"

पहले तो अंगूरी ने 'ना' कर दी पर फिर कुछ सोच-सोचकर कहने लगी, "जो लड़कियां प्रेम करती हैं, वे देखती हैं।"

"तुम्हारे गांव में लड़कियां प्रेम करती हैं ?"

"कोई-कोई।"

"जो प्रेम करती हैं, उनको पाप नहीं लगता ?" मुझे असल में अंगूरी की वह बात स्मरण हो आई थी कि औरत को पढ़ने से पाप लगता है। इसलिए मैंने सोचा कि उस हिसाब से प्रेम करने से भी पाप लगता होगा।

"पाप लगता है, बड़ा पाप लगता है।" अंगूरी ने जल्दी से कहा।

"अगर पाप लगता है तो फिर वे क्यों प्रेम करती हैं ?"

"जे तो... बात यह होती है कि कोई आदमी जब किसी छोकरी को कुछ खिला देता है तो वह उससे प्रेम करने लग जाती है।"

"कोई क्या खिला देता है उसको ?"

"एक जंगली बूटी होती है। बस वही पान में डालकर या मिठाई में डालकर खिला देता है। छोकरी उससे प्रेम करने लग जाती है। फिर उसे वही अच्छा लगता है, दुनिया का और कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

"सच ?"

"मैं जानती हूं, मैंने अपनी आंखों से देखा है।"

"किसे देखा था ?"

"मेरी एक सखी थी। इत्ती बड़ी थी मेरे से।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? वह तो पागल हो गई उसके पीछे। शहर चली गई उसके साथ।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम है कि तेरी सखी को उसने बूटी खिलाई थी ?"

"बर्फी में डालकर खिलाई थी। और नहीं तो क्या, वह ऐसे ही अपने मां-बाप को छोड़कर चली जाती ? वह उसको बहुत चीजें लाकर देता था। शहर से धोती लाता था, चूड़ियां भी लाता था शीशे की, और

मोतियों की माला थी।"

"मैं तो भोली हूं न! पर अब मुझे ऐसे मालूम हुआ कि उसने जंगली बूटी खिलाई थी!"

"नहीं खिलाई थी तो फिर वह उससे प्रेम क्यों करने लग गई?"

"प्रेम तो यूं भी हो जाता है।"

"नहीं, ऐसे नहीं होता। जिससे मां-बाप बुरा मान जाएं, भला उससे प्रेम कैसे हो जाता है?"

"तूने वह जंगली बूटी देखी है?"

"मैंने नहीं देखी। वे तो बड़ी दूर से लाते हैं। फिर छुपाकर मिठाई में डाल देते हैं, या पान में डाल देते हैं। मेरी मां ने तो पहले ही बता दिया था कि किसीके हाथ से मिठाई नहीं खाना।"

"तूने बहुत अच्छा किया कि किसीके हाथ से मिठाई नहीं खाई। पर तेरी उस सखी ने कैसे खा ली?"

"अपना किया पाएगी।"

'किया पाएगी।' कहने को तो अंगूरी ने कह दिया पर फिर शायद उसे सहेली का स्नेह आ गया या तरस आ गया, दुखे हुए मन से कहने लगी, "बावरी हो गई थी बेचारी। बालों से कंघी भी नहीं लगाती थी। रात को उठ-उठकर गाने गाती थी।"

"क्या गाती थी?"

"पता नहीं क्या गाती थी। जो कोई बूटी खा लेती है, बहुत गाती है। रोती भी बहुत है।"

बात गाने से रोने पर आ पहुंची थी। इसलिए मैंने अंगूरी से और कुछ न पूछा।

और अब बड़े थोड़े ही दिनों की बात है। एक दिन अंगूरी नीम के पेड़ के नीचे चुपचाप मेरे पास आ खड़ी हुई। पहले जब अंगूरी आया करती थी तो छन-छन करती, बीस गज़ दूर से ही उसके आने की आवाज़ सुनाई दे जाती थी, पर आज उसके पैरों की झांजरें पता नहीं कहां खोई हुई थीं। मैंने किताब से सिर उठाया और पूछा, "क्या बात है, अंगूरी?"

अंगूरी पहले कितनी ही देर मेरी ओर देखती रही, फिर धीरे से कहने लगी, "बीबीजी, मुझे पढ़ना सिखा दो।"

"क्या हुआ अंगूरी ?"

"मेरा नाम लिखना सिखा दो।"

"किसीको खत लिखोगी ?"

अंगूरी ने उत्तर न दिया, एकटक मेरे मुंह की ओर देखती रही।

"पाप नहीं लगेगा पढ़ने से ?" मैंने फिर पूछा।

अंगूरी ने फिर भी जवाब न दिया। और एकटक सामने आसमान की ओर देखने लगी।

यह दुपहर की बात थी। मैं अंगूरी को नीम के पेड़ के नीचे बैठी छोड़कर अन्दर आ गई थी। शाम को फिर कहीं मैं बाहर निकली, तो देखा, अंगूरी अब भी नीम के पेड़ के नीचे बैठी हुई थी। बड़ी सिमटी हुई थी। शायद इसलिए कि शाम की ठंडी हवा देह में थोड़ी-थोड़ी कपकपी छेड़ रही थी।

मैं अंगूरी की पीठ की ओर थी। अंगूरी के होठों पर एक गीत था, पर बिलकुल सिसकी जैसा। "मेरी मुन्दरी में लागो नगीनवा, हो बैरी कैसे काटूं जोबनवा।"

अंगूरी ने मेरे पैरों की आहट सुन ली, मुंह फेर देखा और फिर अपने गीत को अपने होठों में समेट लिया।

"तू तो बहुत अच्छा गाती है, अंगूरी !"

सामने दिखाई दे रहा था कि अंगूरी ने अपनी आंखों में कांपते आंसू रोक लिए और उनकी जगह अपने होठों पर एक कांपती हंसी रख दी।

"मुझे गाना नहीं आता।"

"आता है…।"

"यह तो…।"

"तेरी …"

"ऐसे ही गिनती है बरस की। चार महीने ठंडी होती है, चार महीने गर्मी, और चार महीने बरखा…"

"ऐसे नहीं, गा के सुनाओ।"

अंगूरी ने गाया तो नहीं, पर बारह महीनों को ऐसे गिना दिया जैसे यह सारा हिसाब वह अपनी उंगलियों पर कर रही हो।—

"चार महीने राजा ठंडी होवत है,
थर-थर कांपे करेजवा।
चार महीने राजा गरमी होवत है,
थर-थर कांपे पवनवा।
चार महीने राजा बरखा होवत है,
थर-थर कांपे बदरवा।"

"अंगूरी ?"

अंगूरी एकटक मेरे मुंह की ओर देखने लगी। मन में आया कि इसके कंधे पर हाथ रख के पूछूं, "पगली, कहीं जगली बूटी तो नहीं खा ली ?" मेरा हाथ उसके कंधे पर रखा भी गया। पर मैंने यह बात पूछने के स्थान पर यह पूछा, "तूने खाना भी खाया है या नहीं ?"

"खाना ?" अंगूरी ने मुंह ऊपर उठाकर देखा। उसके कंधे पर रखे हुए हाथ के नीचे मुझे लगा कि अंगूरी की सारी देह कांप रही थी। जाने अभी-अभी उसने जो गीत गाया था, बरखा के मौसम में कांपनेवाले बादलों का, गरमी के मौसम में कांपनेवाली हवा का, और सर्दी के मौसम में कांपनेवाले कलेजे का, उस गीत का सारा कंपन अंगूरी की देह में समाया हुआ था !

यह मुझे मालूम था कि अंगूरी अपनी रोटी का खुद ही आहर करती थी। प्रभाती मालिकों की रोटी बनाता था और मालिकों के घर से ही खाता था, इसलिए अंगूरी को उसकी रोटी का आहर नहीं था। इसलिए मैंने फिर कहा :

"तूने आज रोटी बनाई है या नहीं ?"

"अभी नहीं।"

"… बनाई थी ? चाय पी थी ?"

"चाय ? आज तो दूध ही नहीं था।"

"आज दूध क्यों नहीं लिया था ?"

"वह तो मैं लेती नहीं, वह तो···।"

"तू रोज चाय नहीं पीती ?"

"पीती हूं।"

"फिर आज क्या हुआ ?"

"दूध तो वह रामतारा···"

रामतारा हमारे मुहल्ले का चौकीदार है। सबका साझा चौकीदार। सारी रात पहरा देता। वह सवेरसार खूब उनींदा होता है। मुझे याद आया कि जब अंगूरी नहीं आई थी, वह सवेरे ही हमारे घरों से चाय का गिलास मांगा करता था। कभी किसीके घर से और कभी किसीके घर से, और चाय पीकर वह कुएं के पास खाट डालकर सो जाता था। —और अब, जब से अंगूरी आई थी वह सवेरे ही किसी ग्वाले से दूध ले आता था; अंगूरी के चूल्हे पर चाय का पतीला चढ़ाता था, और अंगूरी, प्रभाती और रामतारा तीनों चूल्हे के गिर्द बैठकर चाय पीते थे। ···और साथ ही मुझे याद आया कि रामतारा पिछले तीन दिनों से छुट्टी लेकर अपने गांव गया हुआ था।

मुझे दुखी हुई हंसी आई और मैंने कहा, "और अंगूरी तुमने तीन दिन से चाय नहीं पी ?"

"ना," अंगूरी ने जुबान से कुछ न कहकर केवल सिर हिला दिया।

"रोटी भी नहीं खाई ?"

अंगूरी से बोला न गया। लग रहा था कि अगर अंगूरी ने रोटी खाई भी होगी तो न खाने जैसी ही।

रामतारे की सारी आकृति मेरे सामने आ गई। बड़े फुर्तीले हाथ-पांव, इकहरा बदन, जिसके पास हल्का-हल्का हंसती हुई और शरमाती आंखें थी और जिसकी जुबान के पास बात करने का एक खास सलीका था।

"अंगूरी !"

"जी !"

"कहीं जंगली बूटी तो नहीं खा ली तूने ?"

अंगूरी के मुंह पर आंसू बह निकले। इन आंसुओं ने बहते-बहते अंगूरी की लटों को भिगो दिया। और फिर इन आंसुओं ने बहते-बहते उसके होंठों को भिगो दिया। अंगूरी के मुंह से निकलते अक्षर भी गीले थे, "मुझे कसम लागे जो मैंने उसके हाथ से कभी मिठाई खाई हो। मैंने पान भी कभी नहीं खाया... सिर्फ चाय—जाने उसने चाय में ही ..."

और आगे अंगूरी की सारी आवाज उसके आंसुओं में डूब गई।

गुलियाना का एक खत

टहनी पत्तों से भर गई थी, पर उसपर फूल नहीं लगते थे। मैं रोज़ पत्तों का मुंह देखती थी और सोचती थी कि चम्पा कब खिलेगी। गमला कितना भी बड़ा हो, पर गमले में चम्पा नहीं फूलती—मुझे एक माली ने बताया था और कहा था कि इस पौधे की जड़ों को धरती की ज़रूरत होती है। और मैं उस पौधे को गमले में से निकालकर धरती में रोप रही थी कि एक औरत मुझसे मिलने के लिए आई।

"तुम्हें कहां-कहां से पूछती और कहां-कहां से खोजती आई हूं।"

"तुम ? नीली आंखोंवाली सुन्दरी ?"

"मेरा नाम गुलियाना है।"

"फूल-सी औरत।"

"पर लोहे के पैरों चलकर पहुंची हूं। मुझे दो साल होने को आए, चलते हुए।"

"किस देश से चली हो ?"

"यूगोस्लाविया से।"

"भारत में आए कितना समय हुआ ?"

"एक महीना। बहुत लोगों से मिली हूं। कुछ औरतों से बड़ी चाह से मिलती हूं। तुमसे मिले बगैर मुझे जाना नहीं था, इसलिए कल से तुम्हारा पता पूछ रही थी।"

मैंने गुलियाना के लिए चाय बनाई और चाय का प्याला उसे देने

हुए मैंने आलती की एक लट उसके माथे से हटाई और उसकी नीली आंखों में देखा और कहा—"अच्छा, अब बताओ, गुलियाना ! तुम्हारे पांव [illegible], पर ये क्या अभी तुम्हारे हुस्न और तुम्हारी जवानी का भार उठाकर थके नहीं ? ये देश-देशान्तर में भटकने क्या शौक से हैं ?"

गुलियाना ने एक लम्बी सांस लेकर मुस्करा दिया। जब किसी ज़िन्दगी में एक निराशा भरा हुआ हो, उस समय उसकी आंखों में जो चमक उभर आती है, मैंने वह चमक गुलियाना की आंखों में देखी।

"मैंने अभी तक लिखा कुछ नहीं, पर लिखना बहुत कुछ चाहती हूं। मगर कुछ भी लिखने से पहले मैं यह दुनिया देखना चाहती हूं। अभी बहुत दुनिया बाकी पड़ी है जो मैंने देखी नहीं है, इसलिए मैं अभी वापस गई नहीं। पहले इटली गई थी, फिर फ्रांस, फिर ईरान और जापान…"

"पीछे कोई तुम्हारी बाट देखता होगा ?"

"मेरी मां मेरी बाट देख रही है।"

"उसे जब तुम्हारा खत मिलता होगा, तब कितनी तड़प उठती होगी वह।"

"वह मेरे हर एक खत को मेरा आखिरी खत समझ लेती है। उसे यह यकीन नहीं आता कि फिर कभी मेरा और खत भी आएगा।"

"क्यों ?"

"वह सोचती है कि मैं इसी तरह चलती-चलती रास्ते में कहीं मर जाऊंगी। मैं उसे खूब लम्बे-लम्बे खत लिखती हूं। आंखें तो वह खो बैठी है, पर मेरे खत किसी से पढ़वा लेती है। इस तरह वह मेरी आंखों से दुनिया को देखती रहती है।"

"अच्छा, गुलियाना, तुमने जितनी भी दुनिया देखी है, वह तुम्हें कैसी लगी ? किसी जगह ने हाथ बढ़ाकर तुम्हें रोका नहीं कि बस, और कहीं मत जाओ ?"

"चाहती थी कि कोई जगह मुझे रोक ले, मुझे थाम ले, बांध ले पर…"

"ज़िन्दगी के किसी हाथ में इतनी ताकत नहीं आई ?"

"मैं शायद ज़िन्दगी से कुछ अधिक मांगती हूं—ज़रूरत से ज़्यादा। मेरा देश जब गुलाम था, मैं आज़ादी के जंग में शामिल हो गई थी।"

"कब?"

"१६४१ में हमने लोकराज्य के लिए बगावत की। मैंने इस बगावत में बढ़कर भाग लिया था, चाहे मैं तब छोटी-सी ही रही हूंगी।"

"वे दिन बड़ी मुश्किल के रहे होंगे?"

"चार साल बड़ी मुसीबतों भरे थे। कई-कई महीने छिपकर काटने होते थे।

"कई बार दुश्मन हमारा पता पा गए। हमें एक पहाड़ी से चलकर दूसरी पहाड़ी पर पहुंचना होता था। एक रात हम साठ मील चले थे।"

"साठ मील! तुम्हारे इस नाज़ुक-से बदन में इतनी जान है, गुलियाना?"

"यह तो एक रात की बात है। तब हम करीब तीन सौ साथी रहे होंगे। पर सारी उमर चलने के लिए कितनी जान चाहिए, और वह भी अकेले!"

"गुलियाना!"

"चलो, कोई खुशी की बात करें। मुझे कोई गीत सुनाओ।"

"तुमने कभी गीत लिखे हैं, गुलियाना?"

"पहले लिखा करती थी। फिर इस तरह महसूस होने लगा कि मैं गीत नहीं लिख सकती। शायद अब लिख सकूंगी।"

"कैसे गीत लिखोगी, गुलियाना? प्यार के गीत?"

"प्यार के गीत लिखना चाहती थी, पर अब शायद नहीं लिखूंगी। हालांकि एक तरह से ये प्यार के गीत ही होंगे, पर उस प्यार के नहीं जो एक फूल की तरह गमले में रोपा जाता है। मैं उस प्यार के गीत लिखूंगी, जो गमले में नहीं उगता, जो सिर्फ धरती में उग सकता है।"

गुलियाना की बात सुनकर मैं चौंक उठी। मुझे वह चम्पा का पेड़ याद हो आया जिसे अभी-अभी मैंने गमले से निकालकर धरती में लगाया था। मैं गुलियाना के चेहरे की ओर देखने लगी। ऐसा लग रहा था जैसे इस धरती को गुलियाना के दिल का और गुलियाना के हुस्न का बहुत

[illegible] था। [illegible] थी। पर मुझे [illegible] नहीं [illegible] था।

"गुलियाना!"

"मैं [illegible] कुछ और चाहती हूं—कुछ ज्यादा।"

"[illegible] नहीं गुलियाना। सिर्फ उतना, जितना तुम्हारे दिल के बराबर आ सके।"

"पर दिल के बराबर कुछ नहीं आता। हमारे देश का एक लोकगीत है—

"[illegible] ने उठाया,
याद तो कौन करता है,
मेरी याद तो कौन करता देगा?"

"गुलियाना, तुमने क्या किसीको प्यार किया था?"

"कुछ किया जरूर था, पर वह प्यार नहीं था। अगर प्यार होता, तो जिन्दगी से लम्बा होता। साथ ही मेरे महबूब को भी मेरी उतनी ही जरूरत होती जितनी मुझे उसकी जरूरत थी। मैंने विवाह भी किया था, पर यह विवाह उस गमले की तरह था जिसमें मेरे मन का फूल कभी न उगा।"

"पर यह धरती···"

"तुम्हें इस धरती से डर लगता है?"

"धरती तो बड़ी जरखेज है, गुलियाना। मैं धरती से नहीं डरती, पर—"

"मुझे मालूम है, तुम्हें जिस चीज़ से डर लगता है। मुझे भी यह डर लगता है। पर इसी डर से रुष्ट होकर तो मैं दुनिया में निकल पड़ी हूं। आखिर एक फूल को इस धरती में उगने का हक क्यों नहीं दिया जाता!"

"जिस फूल का नाम 'औरत' हो?"

"मैंने उन लोगों से हठ ठाना हुआ है जो किसी फूल को इस धरती में [illegible] नहीं देते, खासकर उस फूल को जिसका नाम औरत हो। यह सभ्यता

का युग नहीं। सभ्यता का युग तब आएगा जब औरत की मरजी के बिना कोई औरत के जिस्म को हाथ नहीं लगाएगा।"

"सबसे अधिक मुश्किल तुम्हें कब पेश आई थी?"

"ईरान में। मैं ऐतिहासिक इमारतों को दूर-दूर तक जाकर देखना चाहती थी, पर मेरे होटलवालों ने मुझे कहीं भी अकेले जाने से मना कर दिया। मैं वहां दिन में भी अकेले नहीं घूम सकती थी।"

"फिर?"

"बीच-बीच में कुछ अच्छे लोग भी होते हैं। उसी होटल में एक आदमी ठहरा हुआ था जिसके पास अपनी गाड़ी थी। उसने मुझसे कहा कि जब तक वह होटल में है, मैं उसकी गाड़ी ले जाया करूं। वह मेरे साथ कभी कहीं न गया, पर उसने अपनी गाड़ी मुझे दे दी। ड्राइवर भी दे दिया। मुझे वह सहारा ओढ़ना पड़ा। पर ऐसा कोई भी सहारा हमें क्यों ओढ़ना पड़े?"

"जापान में भी मुश्किल आई?"

"वहां मुझे सबसे बड़ी मुश्किल पड़ी। सिर्फ एक रात एक शराबी ने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया था। मैंने उसी समय कमरे में से टेलीफोन करके होटल वालों को बुला लिया था। एक बार काम से आने क्या हो जाता, अगर कहीं जोरों की बरसात न शुरू हो गई होती। मैं एक बगीचे में बैठी हुई थी। सामने कुछ दूरी पर एक पहाड़ था। मैं वहां जाना चाहती थी। दो आदमी काफी देर से मेरा पीछा कर रहे थे। मैं जानती थी कि अगर मैं पहाड़ की किसी निर्जन जगह पर चली गई, तो ये आदमी वहां आकर जाने क्या करें। पर मेरे दिल में गुस्सा खौल रहा था कि मैं इन गुण्डों से डरकर पहाड़ पर क्यों न जाऊं। इसलिए मैं बगीचे में से उठकर उस तरफ चल पड़ी। कुछ दूर गई थी कि जोरों से बरसात होने लगी। मुझे अपने होटल में लौटना पड़ा। पर यह सब अन्नत है। मैं यही सोचती हुई चलती जाती हूं कि आखिर यह सब अभी तक इतना गलीज क्यों बना हुआ है जब मनुष्य अपने को इतना सभ्य और इतना उन्नत मानने लगा है!"

"तुम अपने गुजारे के लिए क्या करती हो, गुल?"

"ओह-ओह! सफरनामा लिखती हूं। सफर के लिए अपने देश में जब देती हूं। कुछ गीत लिख लेती हूं। कुछ अनुवाद करती भी रहती हूं। मुझे गीत अच्छे लगते हैं। मैं गीत भी पुराने या अपनी भाषा में अनुवाद करती हूं। शायद आकर कि एक नया सफरनामा लिखूंगी। आज मैं [illegible] भी लिखूं। [illegible] हूं, जो कुछ गीत मेरे दिल में रहा करता है। जब तक मैं जाग रही हूं, तो मैं उसे गीत नहीं पाती।"

"अच्छा, गुलियाना, और अभी छोड़ो, मुझे उस गीत की बात सुनाओ। गीत गीत नहीं लगता, गीत की बात लगती है।"

"गीत ही तो मुझे अभी तक मालूम नहीं है। मैं यह सात गीत पढ़ रही हूं जिनमें से गीत उभरा है। जिनमें से मैंने दो पंक्तियां जोड़ी हैं। इससे आगे नहीं जुड़ती। सफर के बिना भला गीत कैसे जुड़ेगा?" गुलियाना ने कहा और एक झुके हुए गीत की तरह मेरी ओर देखा। फिर गुलियाना ने गीत की दो पंक्तियां सुनाईं—

"आज किसने आसमान का जादू तोड़ा?
आज किसने तारों का गुच्छा उतारा?
और चाबियों के गुच्छे की तरह बांधा,
मेरी कमर से तारों को बांधा?"

और गुलियाना ने अपनी कमर की ओर संकेत कर मुझसे कहा—"यहां चाबियों के गुच्छे की तरह मुझे कई बार तारे बंधे हुए महसूस होते हैं।"

मैं गुलियाना के चेहरे की ओर देखने लगी। तिजोरियों की चाबियों को चांदी के छल्लो मे पिरोकर बना गुच्छा उसने अपनी कमर में बांधने से इन्कार कर दिया था और उसकी जगह वह तारों के गुच्छे अपनी कमर में बांधना चाहती थी। गुलियाना के चेहरे की ओर देखती हुई मैं सोचने लगी कि इस धरती पर वे घर कब बनेंगे जिनके दरवाज़े तारों की चाबियों से खुलते हों।

"तुम क्या सोच रही हो।"

"सोचती थी कि तुम्हारे देश में भी औरतें अपनी कमर में चाबियों का गुच्छा बांधती हैं?"

"हमारी मा-दादिया अपनी कमर मे चाबिया बाधा करती थी।"

"चाबियों से घर का ख्याल आता है और घर मे औरत के आदिम सपने का।"

"देखो, इस सपने को खोजती-खोजती मैं कहा पहुच गई हूं। अब मैं अपने गीतों को यह सपना अमानत दे जाऊगी।"

"धरती के सिर तुम्हारा कर्ज और बढ जाएगा।"

कर्ज की बात सुनकर गुलियाना हसने लगी। उसकी हसी उस लेनदार की तरह थी जिसके कागजों पर लिखी हुई कर्ज की सारी गवाहिया झूठी निकल आई हों।

गुलियाना के चेहरे की ओर देखते मुझे ऐसा लगा कि थाने के किसी सिपाही को अगर गुलियाना का हुलिया अपने कागजों में दर्ज करना पड़े, तो वह इस तरह लिखेगा

नाम : गुलियाना सायेनोविया।

बाप का नाम : निकोलियन सायेनोविया।

जन्म शहर . मैसेडोनिया।

कद : पाच फुट तीन इच।

बालो का रंग : भूरा।

आखो का रंग . सलेटी।

पहचान का निशान : उसके निचले होंठ पर एक तिल है और बाई ओर की भवो पर छोटे-से ज़ख्म का निशान है।

और गुलियाना की बातें सुनते हुए मुझे इस तरह लगा कि किसी दिलवाले इनसान को अगर अपनी ज़िन्दगी के कागजों में गुलियाना का हुलिया दर्ज करना हो, तो इस तरह लिखेगा :

नाम : फूल की महक-सी एक औरत।

बाप का नाम . इनसान का एक सपना।

जन्म शहर : धरती की बड़ी जरखेज मिट्टी।

कद : उसका माथा तारों से छूता है।

बालो का रग : धरती के रंग जैसा।

आखो का रंग : आसमान के रग जैसा।

इन्सान का निशान : उसके होंठों पर ज़िन्दगी की प्यास है और उसके पैर-पैर पर सरहदों का बोझ पड़ा हुआ है।

हैरानी की बात यह थी कि ज़िन्दगी ने गुलियाना को जन्म दिया था, पर जन्म देकर उसकी खबर पूछना भूल गई थी। पर मैं हैरान नहीं थी, क्योंकि मुझे मालूम था कि ज़िन्दगी को बिसार देने वाली बड़ी पुरानी आदत है। मैंने हंसकर गुलियाना से कहा—"हमारे देश में एक बूटी होती है जिसे हम ब्राह्मी बूटी कहते हैं। हमारी पुरानी किताबों में लिखा हुआ है कि ब्राह्मी बूटी पीसकर जो कुछ दिन पी ले, उसकी स्मरणशक्ति लौट आती है। मेरा ख्याल है कि ज़िन्दगी को ब्राह्मी बूटी पीसकर पीनी चाहिए।"

गुलियाना हंस पड़ी और कहने लगी—"तुम जब कोई प्यारा गीत लिखती हो, या कोई भी, जब कोई बड़ा प्यारा लिखता है, तो वह जंगल में से ब्राह्मी बूटी की पत्तियां ही तोड़ रहा होता है। शायद कभी वह दिन आएगा जब ज़िन्दगी को हम अपनी बूटी पिला देंगे कि उसे भूल जाने की यह आदत नहीं रहेगी।"

गुलियाना उस दिन चली गई, पर ब्राह्मी बूटी की बात पीछे छोड़ गई। मैं जब भी कहीं कोई प्यारा गीत पढ़ती, मुझे उसकी बात याद आ जाती कि हम सब मन के जंगल में से ब्राह्मी बूटी की पत्तियां बीन रहे हैं। हम किसी दिन ज़िन्दगी को शायद इतनी बूटी पिला देंगे कि उसे हम याद आ जाएंगे।

पांच महीने होने को है। मुझे गुलियाना का एक भी खत नहीं मिला। और अब महीने पर महीने बीतते जाएंगे, गुलियाना का खत कभी नहीं आएगा। क्योंकि आज के अखबार में यह खबर छपी हुई है कि दो देशों की सीमा पर कुछ फौजियों ने एक परदेसी औरत को खेतों में घेर लिया। औरत को बड़ी चिन्ताजनक हालत में अस्पताल पहुंचाया गया। अस्पताल में पहुंचते ही उसकी मौत हो गई। उसका पासपोर्ट और उसके कागज़ आग से जली हुई हालत में मिले। औरत का कद पांच फुट तीन इंच है। उसके बालों का रंग भूरा और आंखों का रंग सलेटी है। उसके निचले होंठ पर एक तिल है और उसकी बाईं भवों पर एक छोटे-से ज़ख्म

का निशान है।

यह अखबार की खबर नहीं, सोच रही हूं, यह गुलियाना का एक खत है। ज़िन्दगी के घर में जाते हुए उसने ज़िन्दगी को एक खत लिखा है और उसने खत में ज़िन्दगी से, सबसे पहला सवाल पूछा है कि आखिर इस धरती में उस फूल को आने का अधिकार क्यों नहीं दिया जाता जिसका नाम औरत हो? और साथ ही उसने पूछा है कि सभ्यता का वह युग कब आएगा जब औरत की मर्ज़ी के बिना कोई मर्द किसी औरत के जिस्म को हाथ नहीं लगा सकेगा? और तीसरा सवाल उसने यह पूछा है कि जिस घर का दरवाज़ा खोलने के लिए उसने अपनी कमर में तारों के गुच्छे को चाबियों के गुच्छे की तरह बांधा था, उस घर का दरवाज़ा कहां है?

करमांवाली

बड़ी ही सुन्दर तन्दूर की रोटी थी, पर सब्जी की तरी से छुआ कौर मुंह को नहीं लगता था।

"इतनी मिर्चें..." मैं और मेरे दोनों बच्चे सी-सी कर उठे थे।

"यहां बीबी, जाटों की आवाजाही बहुत है। शराब की दुकान भी यहां कोसों में एक ही है। जाट जब घूंट पी लेते हैं, फिर अच्छी मसालेदार सब्जी मांगते हैं।" तन्दूर वाला कह रहा था।

"यहां···जाट···शराब···"

"हां, बीबी, घूंट शराब का तो सब ही पीते हैं, पर जब किसी आदमी का खून करके आएं, तब जरा ज्यादा ही पी जाते हैं।"

"यहां ऐसी घटनाएं···"

"अभी तो परसों-तरसों कोई पांच-छः आ गए। एक आदमी मार आए थे। खूब चढ़ा रखी थी। लगे शरारतें करने। वह देखो, मेरी तीन कुर्सियां टूटी पड़ी हैं। परमात्मा भला करे पुलिस वालों का, वह जल्दी पकड़कर ले गए उन्हें, नहीं तो मेरे चूल्हे की ईंटें भी न मिलतीं···पर कमाई भी तो हम उन्हींकी खाते हैं···।"

कौशलिया नदी देखने की सनक मुझे उस दिन चण्डीगढ़ से फिर एक गांव में ले गई थी। पर मित्रों से चली बात शराब तक पहुंच गई थी। और शराब से खून-खराबे तक। मैं उस गांव से जल्दी-जल्दी बच्चों को लेकर लौटने को हो गई थी।

तन्दूर अच्छा लिपा-पुता और अन्दर से खुला था। और भीतर की ओर एक तरफ कोई छ-सात खाली बोरिया तानकर जो पर्दा कर रखा था, उसके पीछे पड़ी तीन खाटों के पाए बताते थे कि तन्दूर वाले के बाल-बच्चे और औरत भी वहीं रहते थे।···मुझे लगा, कोई इतना बड़ा खतरा नहीं था। वहां पर औरत की रिहायश थी, इज्जत की रिहायश थी।

किसी औरत ने टाट का कोना मोड़ा। बाहर की ओर झांककर देखा, और फिर बाहर आकर मेरे पास आ खड़ी हो गई।

"बीबी, तूने मुझे पहचाना नहीं?"

"नहीं तो ··"

वह एक सादी-सी जवान औरत थी। मैं उसके मुंह की ओर देखती रही—पर मुझे कोई भूली-बिसरी बात भी याद नहीं आई।

"मैंने तो तुझे पहचान लिया है बीबी ! पिछले साल, न सच, उससे भी पिछले साल तू यहां आई थी न !"

"आई तो थी।"

"सामने मैदान में एक बरात उतरी थी।"

"हां, मुझे यह याद है।"

"वहां तूने मुझे डोली में बैठी हुई को रुपया दिया था।"

बात याद आई। दो साल पहले मैं चण्डीगढ़ गई थी। वहां पर नया रेडियो स्टेशन खुलना था। और पहले दिन के समागम के लिए, मेरे दिल्ली के दफ्तर ने मुझे वहां एक कविता पढ़ने के लिए भेजा था। मोहनसिंह तथा एक हिन्दी कवि जालन्धर स्टेशन की तरफ से आए थे। समागम जल्दी ही खत्म हो गया था। और हम तीन-चार लेखक कौशल्या नदी देखने के लिए चण्डीगढ़ से इस गांव में आए थे।

नदी कोई मील-डेढ़ मील ढलान पर थी, और वापसी चढ़ाई चढ़ते हुए हम सब चाय के एक-एक गर्म प्याले को तरस गए थे। सबसे साफ और खुली दुकान यही लगी थी। यहीं से चाय का एक-एक गर्म प्याला पिया था। उस दिन इस दुकान पर पक रहे आम और तन्दूरी रोटियों के साथ-साथ मिठाई भी काफी थी। तन्दूर वाला कह रहा था "आज यहां से मेरी भानजी की डोली गुज़रेगी। मेरा भी तो कुछ करना बनता है न···"

और फिर [illegible] डोली [illegible] गांव के [illegible] था। [illegible] किया था।

[illegible] है, [illegible] है, और [illegible] और [illegible] थीं।

[illegible] उसके मुंह पर आ [illegible] और [illegible] गालियों [illegible] नहीं आने देगा, तुम ही के आओ—[illegible]"

मैं एक मुस्कराहट लिए डोली के पास चली गई थी। डोली का पर्दा एक तरफ से उठा हुआ था। मैंने पास से बैठी नाइन से पूछा था, "दुल्हन का मुंह देख लूं?"

"बीबी जी, [illegible]—हमारी लाडली तो हाथ लगाए मैली होती है..."

और लगभग लाडली की [illegible] नथ में जो मुस्कराहट का मोती चमक रहा था, उसका रंग भरना कोई आसान नहीं था।

मैंने एक रुपया उसकी हथेली पर रखा। और जब लौटी, तो मेरे साथी कह रहे थे, "क्षण-भर पहले जब तुमने कविता पढ़ी थी, कालेज की कितनी लड़कियों ने रुपये-रुपये के नोट पर तुम्हारे हस्ताक्षर करवाए थे। उस बेचारी को क्या मालूम होगा कि यह रुपया उसे किसने दिया था—कहीं जानती होती, हस्ताक्षर ही करवा लेती...।"

दो साल पहले की बात थी। मुझे पूरी की पूरी याद आ गई।

"तू—वह डोलीवाली लड़की?"

"हां बीबी!"

जाने किस घटना ने उसे दो बरसों में लड़की से औरत बना दिया था। घटना के चिह्न उसके मुंह पर से दृष्टिगोचर होते थे, पर फिर भी मुझे सूझता नहीं था कि मैं उसे कैसे पूछूं?

"बीबी, मैंने तेरी तस्वीर अखबार में देखी थी, एक बार नहीं, दो बार। यहां भी कितने ही लोग आते हैं, जिनके पास अखबार होता है, कई

तो रोटी खाते-खाते यहीं पर छोड़ जाते हैं।"

"सच, और फिर तूने पहचान ली थी ?"

"मैंने उसी वक्त पहचान ली थी।—पर बीबी, वे तेरी तस्वीर क्यों छापते हैं ?"

मुझसे जल्दी कोई जवाब न बन पड़ा। ऐसा सवाल पहले कभी किसीने नहीं किया था। कुछ लजाते हुए मैंने कहा, "मैं कविताएं-कहानियां लिखती हूं न · ।"

"कहानियां ? बीबी, क्या वे कहानियां सच्ची होती हैं, या झूठी ?"

"कहानियां तो सच्ची होती हैं, वैसे नाम झूठे होते हैं, ताकि पहचानी न जाएं।"

"तू मेरी कहानी भी लिख सकती है बीबी ?"

"अगर तू कहे, तो मैं जरूर लिखूंगी।"

"मेरा नाम करमावाली (सौभाग्यशालिनी) है। मेरा तो चाहे नाम भी झूठा न लिखना मैं कोई झूठ थोड़े ही बोलूंगी, मैं तो सच कहती हूं—पर मेरी कोई सुने भी तो। कोई नहीं सुनता · ।"

वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे टाट के पीछे पड़ी खाट पर ले गई।

"जब मेरी शादी होनी थी न, मेरे ससुराल से दो जनी मेरा नाप लेने आईं। उनमें से एक लड़की मेरी उम्र की थी। बिलकुल मेरे जितनी। वह किसी दूर के रिश्ते से मेरी ननद लगती थी। मेरी सलवार-कमीज़ नापकर कहने लगी, 'बिलकुल मेरी ही नाप है। भाभी, तू चिंता न कर, जो कपड़े सीऊंगी, तुझे बिलकुल पूरे आएंगे।'

"और सचमुच वरी के जितने भी कपड़े थे, मुझे खूब अच्छी तरह से आते थे। वही ननद मेरे पास कितने महीने रही, और बाद में भी मेरे कपड़े वही सीती रही। मेरा चाव भी बहुत करती थी। मुझे कहा करती थी, 'भाभी, चाहे मैं दो महीने के बाद आऊं, चाहे छः महीने के बाद, पर तू किसी और से कपड़ा मत सिलाना।'· '

"मुझे भी वह अच्छी लगती थी। सिर्फ उसकी एक बात मुझे बुरी लगती थी, मेरा जो भी कपड़ा सीती थी, पहले स्वयं पहनकर देखती थी। कहती थी, 'तेरा-मेरा नाप एक है। देख, मुझे कैसे पूरा है। तुझे भी पूरा

[illegible]।'

" [illegible] था, [illegible] [illegible]"

[illegible] था, [illegible] थी। [illegible] —[illegible] [illegible] [illegible]।

" [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]।"

"[illegible] ?"

" [illegible], जिन्होंने बना दिया। [illegible] हुई थी। [illegible] [illegible] बहुत बुरी लगती थी। [illegible] [illegible] देने लगा था।

" जिन्होंने मुझे यह भी बताया कि थोड़े समय जब वह बाग गोदने लगी थी, तो उसे फिट आ गया था।" आंसुओं में भीगी करमांवाली ने मेरा हाथ पकड़ लिया। "बीबी, तू मेरी मन की बात समझ ले। मुझसे उतार नहीं पहना जाता—मेरी गोटा-किनारीवाली सलवारें, मेरी तारों जड़ी चुनरियां और मेरी सिलमोंवाली कमीजें—सब उसका 'उतार' (पहले पहने हुए कपड़े) थे। और मेरे कपड़ों की भांति मेरा घरवाला भी··· "

करमांवाली की आवाज के आगे मेरी कलम झुक गई। कौन लेखक ऐसा फिकरा लिख देता।

" अब बीबी, मैं वे सारे कपड़े उतार आई हूं। अपना घरवाला भी। यहां मामा-मामी के पास आ गई हूं। इनका घर लीपती हूं, मेज धोती हूं। और मैंने एक मशीन भी रख छोड़ी है। चार कपड़े सी लेती हूं, और रोटी खा लेती हूं। भले ही खद्दर जुड़े, चाहे लट्ठा। मैं किसीका 'उतार' नहीं पहनती।

"मेरा मामा सुलह कराने को फिर रहा है। मेरे मन की बात नहीं समझता। मैं जैसे जी रही हूं, वैसे ही जी लूंगी। और कुछ नहीं चाहती,

सिर्फ एक बार मेरे मन की बात लिख दे ! ..."

करमावाली के जिस जिस्म के साथ कहानी घटी थी उसे मैंने एक बार अपनी बाहों में भींचा, कितनी मजबूत देह थी—कितना मजबूत मन। यह चौगिर्दा, यहां मैं पल-भर पहले मिर्चों से शराब और शराब से खून गरावे पर पहुंचती बात से घबरा गई थी—वहां पर करमावाली कितनी दिलेरी से जी रही थी।

बाहर सड़क पर शिमले से आती मोटरें गुजरती थीं, और जिनकी सवारियां रेशमी कपड़ों में लिपटी हुई, कई बार पल-भर के लिए इस दूकान, पर चाय के प्याले के लिए रुक जाती थीं, या सिगरेट की डिब्बी के लिए, या गर्म तन्दूरी रोटी के लिए। वे, जिनके पहने रखे रेशमी कपड़े, जाने किस-किसके उतार थे।—और करमावाली उनकी मेज पोंछती थी, कुर्सियां झाड़ती थी—वह करमावाली जिसने एक खद्दर की कमीज पहन रखी थी, जो अपने जिस्म पर किसीका उतार नहीं पहन सकती थी।

"बीबी, मैंने तेरा वह रुपया सम्भालकर रखा हुआ है।"

"सचमुच ? अब तक ?"

"हां बीबी ! वह रुपया मैंने उस समय अपनी नाइन को पकड़ा दिया था—और फिर उसके दूसरे दिन की ही बात थी, जब मैंने तेरी तस्वीर देखी थी। मैंने नाइन से वह रुपया लेकर सम्भाल लिया था। तू बीबी, मुझे उस रुपये पर अपना नाम लिख दे। फिर तू जब मेरी कहानी लिखेगी, मुझे जरूर भेजना।"

और करमावाली ने उठकर खाट के नीचे रखा ट्रंक खोला। ट्रंक में एक लकड़ी की सन्दूकची थी। उसने रुपये का तह किया हुआ नोट निकाला।

"मैं अपना नाम लिख देती हूं करमावालिए, मैंने जाने कितनी लड़कियों के नोटों पर अपना नाम लिखा होगा, पर आज मेरा दिल चाहता है, तू मेरे नोट पर अपना नाम लिख दे।"

"कहानी लिखनेवाला बड़ा नहीं होता, बड़ा वह है जिसने कहानी अपने जिस्म पर झेली है।"

"मुझे अच्छी तरह से लिखना नहीं आता।" करमावाली लजा-सी

कहें और फिर बोले—"आपका नाम न जाने क्यों हृदय छू गया।"

"यह, मेरा नहीं नाम, जो उसकी किताब पर लिखा नाम, उसकी कहानी का नाम बताऊँगी।" मैंने यही कहा और भी लिखकर दिया और प्रणाम की।

कल्पनाशक्ति! आज नहीं कहानी लिख रही हूँ। यही रचना के कोट पर लिखा हुआ नया नाम, आज उस कहानी के माथे पर चमकता हीरे की भाँति लगा हुआ है।

यह कहानी मेरा कुछ नहीं समझेगी। पर यह अगर अन्याय न लगे, वे फिर भी उस मेरे हीरे को प्रणाम करते हैं, जिसके मूल का रंग उस मेरे हीरे के रंग से मिलता है।—और मैं साथ ही एक लज्जा से उनके आगे झुकती हूँ, जिन्होंने अपने मनों से उसके भिन्न-भिन्न 'उपहार' पहन रखे हैं।

छमक छल्लो

"तनिक निकट आना छल्लो की मां ! देखो न जरा, आज तो मेरा घुटना बहुत ही सूज गया है।" कहते हुए छल्लो के वृद्ध पिता ने अपनी टांग को फैलाकर देखा। टांग में जोर की टीस हुई और उसने पुनः अपनी टांग समेट ली।

वृद्ध हुकमचन्द की पहली पत्नी का देहान्त हो गया था। वह थी छल्लो की मां। उसके पश्चात् हुकमचन्द ने अपने धन के जोर से एक युवती, करतारो से शादी कर ली थी और विवाह के दो दिन बाद ही वह उसे 'छल्लो की मां' कहकर पुकारने लगा था। करतारो को यह अच्छा नहीं लगा था और उसने कुछ गुस्से में आकर उससे कहा था, "सीधी तरह मेरा नाम लेकर बुलाया करो। मुझे नहीं अच्छा लगता हर समय छल्लो की मां, छल्लो की मां···।"

"भाग्यवान्, मैं जो ठहरा छल्लो का बाप, तो फिर तू ही बता, तू हुई कि नहीं छल्लो की मां? मैंने कोई बुरी बात कही है?" वृद्ध हुकमचन्द कई बार करतारो के कहने पर 'सीधी तरह' उसे उसका नाम लेकर ही पुकारने लगा था, परन्तु फिर भी कभी-कभी भूले-भटके उसके मुंह से निकल ही जाता था, 'छल्लो की मां'।

छल्लो उसकी बड़ी लाडली बेटी थी। उसने उसका नाम कौशल्या रखा था। परन्तु लाड़ से वह उसे 'छल्लो' कहकर पुकारा करता था, 'छल्लो की मां' का सम्बोधन सुन करतारो क्रोध में आ जाती थी, और तब

हुकमचन्द [illegible] बेटा पैदा कर दो, फिर मैं तुम्हें [illegible]। अच्छा, [illegible] फिर मैं तुम्हारी आवाज [illegible] भी था।" यह सुनकर करतारो [illegible] फिर भी उसे हंसी आ जाती।

[illegible] हुकमचन्द करतारो [illegible] कोई संतान पैदा ही न हुआ। हुकमचन्द [illegible] करतारो [illegible]। हां, कभी-कभी उसके मुंह से निकल ही जाता था 'छल्लो की मां'।

फिर देश का विभाजन हो गया। पश्चिमी पंजाब में रहनेवाला हुकम-चन्द पूर्वी पंजाब, करनाल, में आ गया। हुकमचन्द ने जिस धन के जोर से करतारो के यौवन को अपनी वृद्धावस्था से बांध रखा था, वह जोर भी अब टूट गया था। पति-पत्नी के सम्बन्धों का धागा तो अभी उसी प्रकार था, परन्तु अब इस धागे को स्थान-स्थान पर गांठ देनी पड़ती थी। हुकम-चन्द के हाथों से अब धन की लाठी छूट गई थी, अतः उसका बुढ़ापा बहुत कांपने लगा था। घुटनों की पीड़ा ने उसे और भी बेकार कर दिया था।

"अब छल्लो की मा!" इस बार हुकमचन्द ने थोड़ी जोर से आवाज दी।

"न छल्लो की मा मरेगी और न उसका छुटकारा होगा। बोलो, क्या बात है?" करतारो अपने दुपट्टे से हाथ पोंछती हुई रसोई से बाहर आई।

यूं ही बुरे बोल न बोला कर। एक 'छल्लो की मां' तो मर गई—मेरी लाड़ली बेचारी छल्लो की मां। अब दूसरी को भी क्यों मारती है।"

"हां, पहली को भी जैसे मैंने ही मारा है—तुम्हारी लाड़ली छल्लो की मां को। न वह पहली मरती न यह दूसरी आती। आप तो वह मरकर सुख की नींद सो गई और यह सब कांटे बटोरने के लिए मुझे छोड़ गई।"

"तू कांटे न बटोरा कर भाग्यवान्, यह तेरे बस की बात नहीं। तू अपना काम किया कर—कांटे चुभोया कर।"

"मैं तुम्हें भी काटे चुभोती हूं और तुम्हारी नाजुक छल्लो को भी। म्हें चारपाई पर बैठे को थाली परोसकर देती हूं, तुम्हारी लाडो बेटी को ना बनाकर खिलाती हूं। यह सब मैं बाप-बेटी को काटे ही तो चुभोती।"

"तुम क्यों कष्ट सहती हो करतारो! मैंने तुम्हें कई बार कहा है, अब ार ही लड़की चार रोटियां बना लिया करेगी।"

"रोटियां बनाने की उसकी नीयत भी हो। चार टोकरियां लेकर जाती है और सारा दिन घर से बाहर ही बिताकर आती है।"

"मैंने तुम्हें कई बार कहा है कि अब उसे टोकरियां बेचने मत भेजा करो। स्थान-स्थान के यात्री खरे-खोटे सभी। यदि उसके साथ कुछ अच्छी बुरी हो गई तो—"

"छल्लो के बापू, मैंने तुम्हें कई बार कहा है कि यह नसीहत तू मुझे उस समय देना, जब चार पैसे कमाकर मेरी हथेली पर रखे। यहां चार-पाई पर बैठे-बैठे ऐसे ही बोलते रहते हो। मैं ·।" और करतारो सिस-कियां लेकर रोने लगी।

"सच कहती है करतारो। मैं इसे किस मुंह से कुछ कहूं। पैसे ने भी साथ छोड़ दिया और शरीर ने भी। अब यह मीठा बोले अथवा कड़वा, दो रोटियां तो समय पर सेंक ही देती है।' हुकमचन्द के मन में टीस उठने लगी। फिर उसने बड़ी नम्रता से करतारो से कहा, "मेरे लिए लहसुन डालकर तेल गर्म कर दो। मैं बैठकर घुटनों को मलता रहूंगा। साथ ही ईश्वर के लिए उड़द-चने की दाल मत बनाना। यह साली मेरे शरीर को खाये जा रही है।"

"उड़द-चने की दाल क्यों? मैं आज मांस पकाऊंगी।"

'मांस! सच, तुमने तो आज मेरे मन की बात पकड़ ली! शायद एक वर्ष हो गया, मांस की शक्ल नहीं देखी। प्रतिदिन यह जली हुई दाल ···वैद्य भी कहता था, 'हुकमचन्द, यदि तन्दुरुस्त होना है, तो शोरबा पिया करो।' जरूर पकाओ आज मांस।" फिर हुकमचन्द ने अपने घुटनों की ओर देखा, और उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे उसके मुंह की जगह उसके घुटनों को मांस का स्वाद आ गया हो।

“हां, हां, [illegible] । [illegible]
[illegible] । शायद मैं [illegible] टोकरियां [illegible] । [illegible] बेटा, [illegible] । [illegible] दुकान से [illegible] । [illegible] बेटा, [illegible] । [illegible] और देखना, [illegible] कुछ [illegible] उठाकर [illegible] देगा।”

ऐसा लगता था कि छल्लो अपने बाप के मुंह से यह बातें सुनकर बहुत खुश होगी, परन्तु छल्लो उसी तरह सिर नीचा किए टोकरियों को निहार रही।

“किसीको टोकरी खरीदनी भी हो, तो यह इसकी सूरत देखकर नहीं खरीदता। हर समय ऐसे पुते की तरह मुंह बनाकर रखती है।” करतारो के खौलते गुस्से ने जैसे अब हुकमचन्द का पीछा छोड़ दिया हो और छल्लो के पीछे पड़ गया हो।

“क्या हुआ है लड़की की सूरत को करतारो? तुम तो हर समय उसको टोकती रहती हो···! तुमसे तो अच्छा ही मुंह है इसका।” हुकमचन्द ने जैसे करतारो के सारे गुस्से को फिर अपनी ओर मोड़ना चाहा।

परन्तु करतारो का गुस्सा इतनी जल्दी मुड़ने वाला नहीं था। वह उसी तरह छल्लो की ओर देखकर कहने लगी, “ज़रा हंसकर किसीसे बात करे तो कोई एक की जगह दो चीज़ें खरीद ले। इतनी मोटरें यहां से गुज़रती हैं। अन्दर भी सामान और बाहर भी सामान। क्या ये लोग दो टोकरियां खरीदकर नहीं रख सकते? इन टोकरियों का भी कोई भार होता है। फिर ऐसी रंग-बिरंगी टोकरियां। पर यह कुछ मुंह से बोले तब न। जितनी देर मोटरवाले बाहर खड़े होकर चाय-पानी पीते हैं उतनी देर यह ज़रा उनसे मीठी बात करे, हंसकर बोले, तो देखो कौन टोकरी नहीं खरीदता···।”

छल्लो सब कुछ इस तरह सुनती रही, जैसे उसने अपने कानों

रुई नहीं, कपड़ा ठूस रखा हो। आगे वह कई बार कह चुकी थी, "मां, कोई नहीं खरीदता ये टोकरियां। ये लारी और बस वाले तो चाहे कोई टोकरी खरीद भी लें, पर ये मोटर वाले तो इनकी ओर देखते भी नहीं। इनके पास जाओ तो खाने को दौड़ते हैं और कहते हैं, हाथ मत लगाओ शीशे को, मैला हो जाएगा, जरा दूर खड़ी रहो। उनके पास जाने की कोई कैसे हिम्मत करे?" परन्तु मां ने छल्लो की कोई दलील नहीं सुनी। जो गुस्सा उसे मोटरवाले पर आना चाहिए था, वह छल्लो पर ही आ जाता था। वह हमेशा यही कहती, तुझे ढंग भी हो बेचने का! थोड़ा हंस-कर बात किया कर। तू तो लोटे की तरह मुंह बनाकर खड़ी रहती है। कौन तेरे हाथों टोकरी खरीदेगा!"

छल्लो ने सचमुच कई बार कोशिश की थी कि उसका मुंह लोटे की तरह न बने। और वह मोटरों के शीशों के पास खड़ी हो खिलखिलाती रही, मुस्कराती रही, एक बार नहीं, पूरे तीन बार उसे किसी न किसी मोटरवाले ने कहा था, "ऐसे क्यों दांत निकाल रही है। आजकल कौन खरीदता है इन टोकरियों को! कोई जाट गवार लेते होंगे।" और अब कई दिनों से छल्लो लाख यत्न करती, परन्तु उसका मुंह लोटे की तरह ही बना रहता।

"वह छमछमाना, क्या नाम है उसका? वह जो अखबार बेचता है? रत्ता···रत्ता। उसे देखकर तो इसके होंठ अपने-आप ही फड़क उठते हैं। उस समय इसे कैसे हंसने का ढंग आ जाता है?"

"करतारो! यों ही मुर्गे की तरह मिट्टी न उड़ा।" हुकमचन्द ने धमकाकर कहा।

"मैं कोई बुरी बात कह रही हूं? साली को शौक तो चढ़ा है इश्क करने का, पर अपने आशिक का घर-बाहर तो देख लेती। टके-टके के अख-बार बेचता है वह। कल को कहां से खिलायेगा इसे?"

करतारो की बात अभी समाप्त नहीं हुई थी कि छल्लो ने सिर पर चुन्नी ली और टोकरियों का ढेर सिर पर उठा मोटरों के अड्डे की ओर चल पड़ी।

'टके-टके के अखबार बेचता है!' मां की बात छल्लो के कानों में एक फुंसी की तरह दर्द करने लगी। पर जब वह मोटरों के अड्डे पर पहुंची,

तो उसे आने-जाने वालों और गाड़ी मोटर का ध्यान न रहा। वह अपनी टोक-रियों के ग्राहक ढूंढ़ने के स्थान पर उसकी खोज करने लगी जो ठौर-ठौर में अखबार बेचता था।

"आज यहां कैसे आई है छल्लो ?" रत्ना पीछे की ओर से आकर छल्लो के सामने खड़ा हो गया।

"ओ…" छल्लो सकपका गई, फिर रत्ना के मुंह की ओर देखकर उसे मालूम हुआ कि अब उसका मुंह लोटे की तरह नहीं रहा। "मैं एक टोकरी बना रही थी। यह देख, आज मैंने इसमें नये फूल डाले हैं। कितनी सुन्दर है यह टोकरी !"

"छल्लो !"

"हां।"

"टोकरी तू हमेशा ही सुन्दर बनाती है, पर हर ऐरे-गैरे के पास जाकर तेरा टोकरी दिखाना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"तू भी तो हर ऐरे-गैरे के पास जाकर अखबार दिखाता है।" और छल्लो हंस पड़ी।

"मेरी बात और है छल्लो। मैं मर्द हूं। मेरा अखबार कोई खरीदे या न खरीदे, पर मेरे मुंह की ओर कोई नहीं देखता।"

"और मेरे मुंह की ओर कौन देखता है ? मेरा तो लोटे जैसा मुंह है।" छल्लो खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"इस तरह किसी पराये के सामने मत हंसना। टोकरियों के स्थान पर वह…।"

"हश !" और फिर छल्लो का हंसता हुआ चेहरा गंभीर हो गया। "क्या करूं रत्ने, लोगों के सामने तो मेरा मुंह लोटे की तरह बन जाता है और मां कहती है कि तू सबके साथ हंसा कर।"

रत्ना ने छल्लो के हाथ से सब टोकरियां छीन लीं। "मैं तुझे नहीं बेचने दूंगा ये टोकरियां।" एक बन्द दूकान की ओर इशारा करके वह बोला, "तू वहां चुपचाप बैठ जा। मैं आज सभी अखबार बेच लूंगा।"

"और फिर उन पैसों से तू मेरी टोकरियां खरीद लेगा। आगे भी तू कई बार इस तरह कर चुका है, रत्ना ! कब तक इस तरह करेगा ? क्या

तुझे घर में टोकरियों का अचार डालना है ?"

"हां, हां, मुझे टोकरियों का अचार डालना है। नहीं तो किसी दिन तेरी मां मेरा अचार डाल देगी। यह एक लारी आई है, तू यहीं ठहर, मैं अभी आता हूं अखबार बेचकर।" रत्ना शीघ्रता से टोकरियां छल्लो को पकड़ाकर उस लारी की ओर चला गया।

छल्लो के मन में आया कि वह भी उसके पीछे-पीछे उस लारी की ओर जाए। शायद वहां कोई टोकरी का ग्राहक भी हो। पर छल्लो से रत्ना के हुक्म जैसी बात टाली न गई। वह टोकरियां को एक ओर रख-कर उस बन्द दूकान के तख्ते पर बैठ गई।

"ताराचन्द नाम के आदमी ने छुरी से अपनी औरत की नाक काट दी। बाईस वर्ष की सुन्दरी की नाक काट दी। पूरी खबर पढ़िये···।" दूर रत्ना की आवाज आ रही थी।

लोग जल्दी-जल्दी रत्ना से अखबार खरीद रहे थे। छल्लो की हंसी फूट रही थी। "गरम-गरम खबरें···साइन्स की एक नई ईजाद···।" कई बार रत्ना कहा करता था और वह तिब्बत के दलाईलामा की और रूस के राकेटों की बातें ऊंची-ऊंची आवाज में सुनाया करता था, परन्तु आज छल्लो की हंसी फूट रही थी, "भला यह भी कोई सुनने लायक बात है ? किसी बेवकूफ ने अपनी सुन्दर पत्नी की नाक काट दी···।"

ड्राइवर ने लारी का हार्न दिया। सभी सवारियां पुनः लारी में बैठ गईं। रत्ना शीघ्रता से छल्लो के पास वापस आ गया और बोला, "आज बहुत-से अखबार पहली और दूसरी लारी में ही बिक गए।"

"तू तो प्रार्थना करता होगा कि रोज कोई मर्द अपनी औरत की नाक काट दिया करे !" छल्लो हंस पड़ी।

"औरत की नाक कटे या अपनी अकल, अखबार तो इसी तरह की खबरों से बिकता है। देख नहीं रही थी, लोग कैसे मेरे हाथों से अखबार छीन रहे थे।"

"क्यों रत्ना, लोगों को यह बात इतनी मजेदार क्यों लगी ? औरत की जाने कोई गलती थी भी कि नहीं। अगर हो भी, तो भी इसमें क्या मर्दानगी है कि औरत का दिल न जीता गया तो उसकी नाक ही काट

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"नहीं, रत्ना, नहीं। रोज़-रोज़ ठीक नहीं। और आज तो बापू ने कह[illegible] था कि पूरी चार टोकरियां बेचना।" यह कहती हुई छल्लो मोटर की ओर चली गई और रत्ना नाली की ओर दौड़ गया।

"पूरा आध सेर मांस, प्याज, लहसुन, अदरक···।" छल्लो सोच रही थी कि कितना अच्छा हो, आज यदि वह अपने बापू के लिए यह सब कु[illegible] खरीदकर ले जा सके!

'किसीको टोकरी खरीदनी भी हो, तो वह इसकी सूरत देखकर नह[illegible] खरीदता। तनिक किसीसे हंसकर बात करे, तो कोई एक की जगह [illegible] खरीद ले। यह तो लोटे जैसा मुंह बनाए रहती है···!" मां करतारो [illegible] सभी बोल छल्लो के कानों में तिनकों की तरह चुभ रहे थे।

छल्लो ने मोटरवाले बाबू की ओर देखा और सोचा, यदि साम[illegible] मोटर में रत्ना बैठा हो, तो वह उसे देखकर कितनी खुश हो! साथ [illegible] छल्लो ने महसूस किया कि अब उसका मुंह लोटे की तरह नहीं था।

"बाबू, बहुत सुन्दर टोकरी है।"

"कौन-सी टोकरी?" बाबू गाड़ी में बैठे-बैठे ही बोला, और फि[illegible] कहने लगा, "मुझे तो सिर्फ सोडा चाहिए, टोकरी-वोकरी नहीं। जा[illegible] सामने की दूकान से एक गिलास में सोडा और बरफ डलवा लाओ।"

"सोडा और बरफ," छल्लो ने सामनेवाले दूकानदार को बाबू का संदेश दे दिया। वह फिर मोटर के पास वापस आ गई। "बहुत सुन्दर टोकरी है, बाबू!" छल्लो ने खिड़की के खुले शीशे में से अपनी सबसे सुन्दर टोकरी बाबू के आगे करते हुए कहा।

बाबू ने टोकरी की ओर नहीं देखा। वह छल्लो को देखते हुए कहने लगा, "टोकरी है तो बड़ी सुन्दर!"

"खरीद लो न, बाबू! सिर्फ छ आने···।" साथ ही छल्लो ने बड़ा यत्न किया कि उसका मुंह मोटे जैसा न बन जाए।

सामने की दूकान का लड़का सोडा-बरफ ले आया। बाबू ने अपनी गाड़ी में पड़ी हुई एक टोकरी खोली और व्हिस्की की बोतल निकालकर उसमें सोडा मिलाया। फिर वह घूंट पीता हुआ छल्लो से कहने लगा, "सिर्फ छः आने?"

"हां बाबू, सिर्फ छः आने, और दो ले लो, तो दस आने।"

"अगर चार ले लूं तो?"

"चार!" छल्लो अपनी उंगलियों पर पैसे गिनने लगी। साथ ही उसे ख्याल आया 'मां कहती तो मन ही कहती है कि यदि मैं हुसकर किसीसे टोकरी खरीदने के लिए कहूं तो···।'

बाबू अपना गिलास खत्म कर चुका था। खाली गिलास और सोडे के पैसे सामनेवाले दूकानदार के नौकर को देकर उसने गाड़ी स्टार्ट कर ली।

"बाबू, टोकरी?" छल्लो की आशा बुझने लगी।

"टोकरी तो मैं ले लूं, लेकिन मेरे पास टूटे हुए पैसे नहीं।"

"मैं सामने किसी दूकान से नोट तुड़वा लाती हूं।" छल्लो ने बड़ी जल्दी से कहा।

"इन छोटी-छोटी दूकानों पर नोट नहीं टूटेगा। मेरे पास कोई छोटा नोट नहीं, सभी सौ-सौ के नोट हैं।" छल्लो ने निराश होकर अपनी बांह पीछे कर ली।

"हां, एक बात हो सकती है," बाबू ने कुछ सोचकर कहा।

छल्लो की आशा जाग पड़ी।

"बाहर की बड़ी सड़क पर पेट्रोल का एक पम्प है। मैं वहां से पेट्रोल

[illegible] ।"

[illegible] ।"

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] छल्लो [illegible] । [illegible] ।" और छल्लो [illegible] ।

बाहर [illegible] हुई, और [illegible] गई । फिर [illegible] सड़क पर जा[illegible] हुई [illegible] की ओर [illegible] ।

"बाबू कहाँ है [illegible] ?" छल्लो ने घबराकर पूछा । फिर उस[illegible] बाबू की बाहों में [illegible] गई । छल्लो के सिर में कुछ चक्कर आए और फिर उसकी बाहें बाबू की बाहों में [illegible] गई ।

जब छल्लो को होश आया, तो वह एक वृक्ष के नीचे अस्त-व्य[स्त] सिकुड़ी पड़ी थी । वहां [illegible] नहीं थी । कोई बाबू नहीं था । छल्लो ने अ[illegible] कपड़ों की ओर देखा । सामने पड़ी हुई टोकरियों की ओर देखा । सब कु[छ] मिट्टी में लथपथ हो रहा था ।

टोकरियां छल्लो से उठाई न गई । मुश्किल से उसकी टांगों ने उस[illegible] ही भार उठाया और वह कच्ची सड़क पर मन-मन के कदम धरती पक[illegible] सड़क तक पहुंच पाई । एक राह चलती लारी खड़ी हो गई । कंडक्टर [illegible] पूछा, "करनाल ?"

छल्लो ने एक बार लारी को देखा, फिर सर हिलाया, "हां ।"

और जब छल्लो से किसीने पैसे मांगे, तो वह चौंक पड़ी । उ[illegible] पास तो लारी का भाड़ा नहीं था । एकाएक उसे याद आया, कल जेब[illegible] तीन-चार आने थे । उसने अपनी जेब टटोली । जेब में पैसे तो नहीं परन्तु एक दस रुपये का नोट था ।

छल्लो के मन में आया कि अच्छा हो, यदि वह लारी से कूद ज[illegible] गिरकर मर जाए और नोट के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाएं ।

कंडक्टर ने छल्लो को सोच में पड़ी देख खुद ही उसके हाथ से नोट ले लिया और बोला, "भाड़ा तो कुल पांच ही आने है, लेकिन मैं तुम्हारा नोट तोड़ देता हूं।" और फिर उसने जितने पैसे छल्लो को वापस दिए, उसने चुपचाप जेब में डाल लिए।

"गिन लो अच्छी तरह," कंडक्टर ने कहा। छल्लो शायद उस समय खिड़की में अपना सिर रखकर सो गई थी।

लारी करनाल के अड्डे पर खड़ी हो गई। कुछ सवारियां उतरीं, छल्लो भी उतरी और फिर अनमनी-सी घर की गली की ओर चल पड़ी। गली के कोने में मांस की दूकान थी। छल्लो के पांव रुक गए।

"आधा सेर मांस," छल्लो ने धीरे से कहा और जेब से पैसे निकाले।

छल्लो ने घर आकर जब रसोई में मांस रखा और साथ ही प्याज, लहसुन, अदरक और हरी मिर्च भी रखी, तो उसकी मां करतारो पुलकित हो उठी, "आज तूने कितनी टोकरियां बेच ली ?"

"सभी," छल्लो ने धीरे से कहा और फिर वह नहाने के लिए बाल्टी भरने लगी।

"वह रत्ना आया था, तेरी तलाश करता···।"

"अच्छा।" छल्लो ने आगे कुछ नहीं पूछा। मां ने भी और कुछ न कहा। छल्लो ड्योढ़ी का दरवाजा बन्द करके नहाने लगी।

छल्लो जिस समय नहा-धोकर, कपड़े बदलकर रसोई में आई, करतारो हांडी में मांस भून रही थी।

"देख लो, आज घर बसता हुआ दिखाई दे रहा है न ! जिस घर में छौंक की सुगन्ध नहीं आती, घरम की बात है, वह घर घर ही नहीं।" छल्लो का बापू बोला और फिर छल्लो की ओर देखकर उसने बड़े लाड़ से कहा, "मेरी छमक छल्लो।"

छल्लो ने जलते चूल्हे की ओर देखा। चूल्हे का सारा बदन आग की तरह जल रहा था। ऊपर हांडी रखी थी। छल्लो को महसूस हुआ, जैसे उस हांडी में उसकी मुस्कराहट भुनी जा रही है।

"उठ, मेरी बेटी, नई टोकरी बनानी शुरू कर दे। मैंने बंतें पानी में भिगो रखे हैं।" जिस प्रकार करतारो ने छल्लो को आज बेटी कहा था,

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अमाकली

किशोर के होंठ जवानी के रोष और बेबसी के गर्म पानियों में उबल रहे थे। और इन होंठों से जब उसने अपनी विवाह की पहली रात में अपनी बीवी के जिस्म को छूआ, उसे लगा कि वह एक कच्चा मलमल छू रहा था।

किशोर के बाप ने आज सारी हवेली को मुँह-माँगा बिजली की रोशनी से सजाया हुआ था, पर किशोर के सोने के कमरे को आज सारी हवेली से विशिष्ट रूप देने के लिए किशोर की बहनों ने और किशोर की भाभियों ने, जिनमें उसके दोस्तों की बीवियाँ भी शामिल थीं, और जिनके साथ उसके दोस्त भी मिले हुए थे, मोमबत्तियों की रोशनी चुनी थी।

किशोर ने मोमबत्तियों की रोशनी में अपनी बीवी के मुँह की ओर देखा। उसकी बीवी के गोरे-गोरे मुख पर एक मुस्कान थी। फिर किशोर ने मोमबत्तियों के मुख की ओर देखा, मोमबत्तियों के गालों पर पिघलती मोम के आँसू बह रहे थे। और किशोर का दिल किया, कि वह अपनी सारी की सारी बीवी को झकझोर कर कहे कि वह देख इन मोमबत्तियों के सारे आँसू तुम्हारी एक मुस्कान का मूल्य चुका रहे हैं।

किशोर ने अपनी जुबान दाँतों के नीचे दबा ली। उसे लगा कि अभी उसकी बीवी खिलखिलाकर हँस उठेगी और कहेगी, 'आज इस हवेली की बैठक को तो देखा। अगर एक कोने में रेडियो-ग्राम पड़ा है तो दूसरे कोने में टेपरिकॉर्डर रखा हुआ है। तीसरे कोने में चाचाओं ने भरे-पूरे ड्रं

[illegible] । [illegible]

[illegible] ।

[illegible] दिया था।

[illegible] उसकी [illegible] और [illegible] गया।

[illegible] था। [illegible] थी। [illegible] अमाकड़ी के [illegible] थी।

[illegible] याद आई। अपने ननिहाल गांव का अजग्गा जाट याद आया। और उस अजरे जाट की बेटी अमाकड़ी याद आई।

किशोर जब कालेज में पढ़ता था, एक बार अपनी मां के कहने पर गर्मी की छुट्टियों में अपनी ननिहाल चला गया था और फिर पूरे तीन सालों के लिए उसने सारी की सारी छुट्टियां अपनी ननिहाल गांव के लेखे लगा दी थीं।

"अमाकड़ी—यह भला तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हारा क्या नाम रखा है?" किशोर ने उससे पूछा था।

"हमारे गांव में आम बहुत होते हैं। लोग उन्हें चूसते भी हैं, उनका अचार भी डालते हैं, उनका मुरब्बा भी डालते हैं, उनकी चटनी भी बनाते हैं और उनकी फांकें सुखाकर मर्तबान भर लेते हैं।—मेरी मां ने मुझे भी आम की एक फांक समझ लिया और मेरा नाम अमाकड़ी रख दिया था।" उस तीखी, पतली और सांवली लड़की ने बड़े भोलेपन से किशोर को जवाब दिया।

पहले साल की छुट्टियां तो पूरी हंसी-खेल में बीत गई थी, सिर्फ इतना फरक पड़ा था कि शहर से गांव जाते समय किशोर ने मां को जो बात कही थी, "मैं तुम्हारी बात नहीं मोड़ता, पर इतनी बात अभी बता देता हूं कि मुझसे गांव में अधिक दिन नहीं कटेंगे। पांच-सात दिन रहूंगा और फिर बाकी की छुट्टियां बिताने के लिए मैं किसी दोस्त के पास चला जाऊंगा।" वह बात किशोर को याद न रही।

गांव में बहुत-से आम के बाग थे। एक बाग अमाकड़ी का भी था। किशोर सारा दिन आम के उस बाग में बैठा रहता था। यहीं बैठकर पढ़ता था और दुपहर को आमों की छाया में चारपाई डालकर वहां सो रहता था। दुपहर को चलती लू में चाहे जमीन गर्म हो जाती थी पर घड़े का पानी ठंडा हो जाता था। अमाकड़ी ने उसके लिए अपने बाग में एक कोरा घड़ा ला रखा था, जिसपर उसने 'चप्पनी' के स्थान पर कांसे का एक चमकता कटोरा औंधा धरा हुआ था।

न मालूम दुपहर की लू के हाथों, या कोरे घड़े की सुगन्ध के हाथों, या कांसे के चमकते कटोरे के हाथों, किशोर को बार-बार प्यास लग आती थी। और जब वह आमों की रखवाली करती बैठी हुई अमाकड़ी को पानी पिलाने के लिए कहता था तो अमाकड़ी हर बार उसे कहती थी, "किशोर बाबू, तुम्हें हर समय प्यास ही लगी रहती है?" और अमाकड़ी की हंसी उसके हाथ में पहनी हुई चूड़ियों की तरह खनक उठती थी।

किशोर को पूरी की पूरी अमाकड़ी आम की एक टहनी जैसी लगती थी। अमाकड़ी अपने गले में कच्चे हरे रंग की कमीज पहनती थी, जो किशोर को टहनी के हरे पत्तों जैसी लगती थी। और जिस दिन जब कभी वह अपनी कमीज बदल आती थी, किशोर उसे उस कमीज की याद दिला दिया करता था और फिर अगले दिन अमाकड़ी उस कमीज को धो-सुखा-कर फिर पहन आती थी।

बस, इस तरह पहले साल की छुट्टियां हंसी-खेल में ही बीत गई थीं। किशोर शहर लौट आया था। और शायद कोई नन्हीं-सी, कोयल-सी अमाकड़ी का आकर्षण भी अपने साथ ले आया था, जिसे उसने सिर्फ उस

[illegible]

[illegible]

किशोर अमाकड़ी के मुंह की ओर देखता रह गया था और फिर [illegible] अमाकड़ी ने [illegible] अपने दोनों हाथों [illegible] अपनी आंखें ढक ली थीं। आम की फांकें [illegible] थीं और फिर उनकी आंखों के [illegible] में भीग गई थीं।

[illegible] दूसरे दिन किशोर ने देखा था कि पेड़ों की छाया में उनके [illegible] एक नई खाट [illegible] हुई थी और खाट के पाये के पास पानी से भरा हुआ [illegible] रखा हुआ था। और उस दिन दुपहर को अमाकड़ी अपने बाग में आई थी उसके गले में [illegible] रंग की कमीज पहनी थी और उसके हाथों में उसी रंग की कांच की चूड़ियां पहनी हुई थीं।

इन छुट्टियों में अमाकड़ी के लिए किशोर की भूख जगी हुई थी [illegible] फिर यह भूख उसकी आंखों में सुलगने लगी थी। इसी भूख के हाथों [illegible] होकर एक दिन किशोर ने अमाकड़ी की बांह पकड़ ली थी, पर अमा[illegible] ने बांह छुड़ाकर कहा था, "किशोर बाबू ! आम की इस फांक को [illegible] तुम्हारा क्या संवरेगा ? आज तुम इसे चखोगे और दूसरे दिन एक छि[illegible] की तरह फेंक जाओगे।" अमाकड़ी ने अपना मुंह परे कर लिया था [illegible] किशोर का मुंह भूख से तड़पता रह गया था।

यूं छुट्टियां हंसी-खेल में नहीं बीती थीं, बल्कि आंसुओं की तैयार[illegible] बीती थीं। इस बार किशोर जब शहर लौटा था, कुछ आहें वह [illegible] साथ ले आया था, और कुछ आहें वह अमाकड़ी को दे आया था।

और फिर वह अगले साल की गर्मियों की इन्तजार न कर [illegible] था। सर्दी की छुट्टियां चाहे थोड़ी थीं, पर वह कांपते पैरों से [illegible]

ननिहाल पहुंच गया था और अपनी जेब में वह दुनिया के सारे इकरार र कर ले गया था। और इस बार अमाकडी ने उसके लिए अपने मन ी फाक चीरकर अपने तन की थाली में परस दी थी।

और फिर अगले साल जब गर्मी की छुट्टियां हुई थी, किशोर फुर्ती से पनी ननिहाल गया था, तो उसने अमाकडी को, आम की फाक को, पनी दोनों आंखों से चूमकर कहा था :

"आज तुम्हारे घुंघराले बाल मुझे शहद के छत्ते-से दिखाई देते हैं और तुम्हारे होंठ कोरा शहद !"

"और मेरी आखें ? ये शहद की मक्खियां नहीं लगतीं तुम्हें ? छत्ते को सभलकर हाथ डालना।..."

अमाकडी ने उत्तर दिया था और किशोर को सचमुच लगा कि जैसे आंखें शहद की मक्खियों की तरह उसके दिल को लड गई हों और अब उसके दिल पर एक सूजन चढ़ी जा रही थी।

आम की फाक को शहद का छत्ता बने अभी थोड़े ही दिन हुए थे जब किशोर ने एक दिन उसके ताजे धुले बालों को सूंघकर उससे कहा था :

"शराब मैंने कभी पी नहीं, पर तुम्हें देखते ही मेरे होश-हवास खो जाते हैं।"

और इस तरह अमाकडी का रूप इस तरह हो गया था जैसे वह आमों के रस को, शहद की बूंदों को और शराब की घूंटों को मिलाकर खा गया हो।

उस बार किशोर जब अमाकडी से बिछड़ने लगा था, अमाकड़ी की बांहें उसके बदन से छूटते समय ऐंठ गई थीं। और बावरी हुई अमाकडी ने किशोर की बांहों पर जगह-जगह अपने दांत गड़ाकर लाल निशान उभार दिए थे और कहा था, "ये अनार के फूल जितने दिन तुम्हारी बांहों पर खिले रहेंगे, मुझे उतने दिन तो याद करोगे।"

"मेरी जगली बिल्ली, मेरी हलकाई बिल्ली," और किशोर ने अपनी बांहों पर उभरे लाल फूलों को चूमकर एक आम की फाक का, एक शहद के छत्ते का, और एक शराब की सुराही का एक नया रंग देखा था।

उन गर्मियों में बरसात कुछ जल्दी पड़ गई थी और उस दिन अमा-

[illegible]

फिर किशोर के मन की यह मुराद और अमाकड़ी के मन की [illegible] मुराद साथ में इकट्ठी-इकट्ठी [illegible] आ गई थी, और जब किशो[illegible] नाम की उस [illegible] था, तो उसने किशोर की मां को [illegible] [illegible] था, [illegible] अगर कोई [illegible] कुएं में गिर पड़े [illegible] फिर वह किसी से नहीं निकाला जाता। [illegible] न बंधा लेना। [illegible] से विवाह का रस्सा डाल दें और उसे कुएं से निकाल लें।"

यह नहीं था कि किशोर ने हाथ-पांव नहीं मारे थे, पर उसके म[illegible] प्यार की जिद एक तैराक की तरह हाथ में शादी का रस्सा लेकर इस कु[illegible] में उतर पड़ी थी और किशोर को कस-बांधकर इस कुएं में से निका[illegible] लाई थी।

आज विवाह की पहली रात थी और किशोर अमाकड़ी को इस तर[illegible] याद कर रहा था जैसे कुएं की जगत पर खड़ा होकर कुएं में झांक र[illegible] हो। अब उसे मालूम था कि अगर वह चाहे भी तो लौटकर वह इस कु[illegible] में नहीं गिर सकता था, क्योंकि अब उसकी गर्दन में उसके विवाह [illegible] रस्सा बंधा हुआ था। पर फिर भी अभी वह कुएं की जगत से नहीं उ[illegible] पा रहा था। शायद इस कुएं का जो पानी उसने पिया था, वह पा[illegible] उसकी नाड़ियों में अपना हक मांग रहा था।

रात शायद खत्म होने पर आई थी। हवेली की बत्तियां एक-एक [illegible] बुझने लगी थीं। और किशोर को लगा कि अमाकड़ी के गले में पहनी हु[illegible]

कुड़नी से कोई सीप के बटनों को एक-एक करके उतार रहा था।

सवेरे-सार जब किशोर की बहनों और भाभियों ने रात के जगने से किशोर की लाल हुई आंखें देखीं—तो वे हंसी में दुहरी होती किशोर को छेड़ने लगीं, "आपकी ही दुल्हन थी, कहीं भाग तो नहीं चली थी। इतनी क्या पड़ी थी सारी रात जगने की!" तो किशोर ने मुंह नहीं खोला था। पर फिर जब किशोर की बहनों ने दहेज में आए हुए रेफरीजरेटर को बड़े चाव से खोलते हुए किशोर से पूछा था, "भाज बीराजी, इसमें कौन-कौन सी चीजें रखें?" तो किशोर का भीचा हुआ मुंह खुल गया, "इसमें शलजम रख दो।" किशोर ने कहा और एक ओर चला गया।

कितने ही दिन बीत गए। आमों का मौसम आया। घर के सब लोगों ने आमों को दिन भरकर फ्रीज में ठंडा किया, पर किशोर ने आम को मुंह न लगाया। सवेरे की चाय के समय अगर मेज पर शहद पड़ा होता, किशोर बिना चाय पीए कमरे से चला जाता। किशोर के दोस्त आते, फ्रीज में शराब की बोतलें रखते, पर किशोर ने कभी कसम खाने को भी एक घूट न भरा—और जब एक बार उसकी बहन खीझ उठी, उसकी भाभियां गुस्से हो गईं, और उसके दोस्त उसपर बरस पड़े, तो सिर्फ एक बार किशोर के मुंह से निकला, "तुम मुझे कोई चीज न दिया करो खाने के लिए, बस शलजम दे दिया करो, शलजम। मैं सिर्फ शलजम खाने के लिए जन्मा हूं।"

फिर गर्मियां आ गईं। किशोर के ससुराल वालों ने किशोर का और उसकी बीवी का कमरा एयर-कण्डीशण्ड करवा दिया। उन्होंने कहा था कि [illegible] कमरे में रहने की आदत नहीं।

[illegible] दफ्तर से उठकर, दुपहर का खाना खाने के लिए घर [illegible] उसकी बीवी उसे ठण्डे कमरे में थोड़ा आराम करने को कहती। किशोर ने अपने मन में धार लिया था कि मैं एक मर्द नहीं, मैं एक बैल हूं। मैं सारी उमर चुप रहकर शलजम चरता रहूंगा, और आंखों पर पट्टी बांधकर उसी जगह पर घूमता रहूंगा जहां मेरी बीवी मुझे घुमाएगी। इसलिए किशोर ने कभी अपनी बीवी का कहा नहीं मोड़ा था।

फिर कुछ दिन के बाद किशोर को लगा कि उसके सारे अंग सोने जा

रहे थे । वह [illegible] के लिए, आराम को [illegible] तो सारा दिन पलंग पर पड़ा रहता । अब उसे अमाकड़ी भी याद नहीं आती थी । उसका वह ठंडा होता जा रहा था । उसके ख्याल सुन्न होते जा रहे थे । वह बर्फ का एक टोटा बनता जाता था ।

किशोर की सेहत की सबको चिन्ता हुई । एक डाक्टर आता तो एक जाता । वही गर्म दवाइयां किशोर के गले में उलटीं । वह भी गले के नीचे उतरते-उतरते बर्फ की गोलियां बन जाती थीं ।

फिर एक घटना घट गई । किशोर की ननिहाल से तार आया कि किशोर को शायद गांव की गर्मी रास आ जाएगी, और उसकी ननिहाल वालों ने उसे बुला भेजा । किशोर ने तार पढ़ा, पर उसके सुन्न अंगों में कोई हरकत न हुई । पर उस रात किशोर को एक सपना आया । सपने में उसकी खाट आम के पेड़ों के नीचे डाली हुई थी । खाट के पास के पास एक कोरा घड़ा रखा हुआ था । घड़े पर कांसे का कटोरा औंधा पड़ा था और अमाकड़ी जब कटोरे में पानी डालकर किशोर को देने लगी, कटोरा उसके हाथ से गिर गया और अमाकड़ी एक कोयल बनकर उसके पास से उड़ गई ।

कोयल की कूकों से किशोर की आंख खुल गई । अपने ठंडे ठरे हाथों से जब किशोर ने अपने मुख को टटोला तो गर्म आंसू उसकी आंखों से बह रहे थे ।

किशोर घबराकर पलंग पर उठ बैठा, और उसे ख्याल आया कि अगर वह इसी घड़ी, इसी पल इस कमरे से न निकला तो मुश्किल से पिघले हुए ये आंसू उसकी हड्डियों की तरह, उसके घुटनों की तरह और उसके ख्यालों की तरह जम जाएंगे ।—और फिर वह स्टेशन की ओर चल निकला । उस ओर चल पड़ा, जिस ओर से कोयल की कूक आ रही थी ।

दूसरे दिन दुपहर के समय किशोर जब आमों के बाग में पहुंचा, सचमुच ही उस जगह पर एक खाट डाली हुई थी, जो जगह पूरे तीन साल उसके लिए रक्षित रही थी । किशोर के पैर ठिठक गए, 'जाने आज मेरी इस खाट पर कौन लेटा हुआ है ।'

और फिर खाट पर जो कोई लेटा हुआ था, उसने करवट बदली और किशोर के कानों में चूड़ियां झनक उठीं। किशोर ने आगे बढ़कर अमाकड़ी के पांवों को छुआ और जब अमाकड़ी ने चौंककर अपने पैर परे किए तो किशोर ने देखा कि अमाकड़ी अब आम की फांक नहीं थी, आम का छिलका थी। अमाकड़ी अब शहद का छत्ता नहीं थी, शहद की मक्खी थी। और अमाकड़ी अब शराब की सुराही नहीं थी, सुराही का ठीकरा थी।

"किशोर बाबू···" अमाकड़ी ने कोयल की कूक की तरह कहा।

किशोर ने घुटनों के बल बैठ अपना सिर खाट पर रख दिया।

"अब तू यहां किसलिए आया?" अमाकड़ी ने बिलखकर पूछा।

"ठंडी यख़ दुनिया में मैं जम गया हूं। मैं गर्म लू की तलाश में आया हूं—" किशोर ने खाट से सिर उठाकर कहा और फिर अमाकड़ी के हाथ को अपने कांपते हाथ में लेकर कहने लगा, "आख़िर मैं एक इन्सान हूं।"

"एक इन्सान, एक मर्द।" अमाकड़ी ने धीरे से कहा।

"एक इन्सान, एक मर्द।" किशोर ने अमाकड़ी के शब्दों को दुहराया।

"जो मुहब्बत के आसन से उठकर विवाह की वेदी पर जा बैठे, वह इन्सान होता है? वह मर्द होता है?" और अमाकड़ी ने किशोर की बांह पर एक जानवर की तरह झपटकर अपने सारे दांत गड़ा दिए।

किशोर अपनी बांह पर उभरे खून के फूल को देखने लगा और थकी हुई, टूटी हुई अमाकड़ी सिरहाने पर सिर रखकर कहने लगी, "यह अनार का फूल नहीं, यह ज़हर का फूल है। तू मुझे जंगली बिल्ली कहा करता था न, हलकाई बिल्ली···"

"मुझे सचमुच तुम्हारे हलकाए होंठों का ज़हर चढ़ गया है—अमाकड़ी। इस दुनिया में मेरी कोई दवा नहीं।" किशोर ने तड़पकर कहा।

"कोई हलकाया हुआ जानवर काट जाए तो तुम्हें मालूम है कि चौदह टीके लगवाते हैं। अभी तो तुमने एक ही टीका लगवाया है। अभी तो तुमने एक ही विवाह किया है न। कम से कम चौदह तो कर ले···।"

और अमाकड़ी की आंखें भीग गईं।

एक रूमाल, एक अंगूठी, एक छलनी

बन्ती पहली से लेकर आठवीं तक पढ़ी। हमारे साथ पढ़ती थी। अभी वह पांचवीं में पढ़ती ही थी कि उसके पिता उसे स्कूल से उ के लिए आ गए। हमारे स्कूल की बड़ी उस्तादनी ने बन्ती की फीस कर दी और यों उसे स्कूल न छोड़ने दिया।

सातवीं और आठवीं कक्षा की लड़कियां देखने में एकसाथ एक में बैठती थीं, पर आधी छुट्टी के समय आठवीं की लड़कियां हम स की लड़कियों को अपने पास नहीं फटकने देती थीं। हमेशा अलग बातें करती रहतीं। हम सातवीं की लड़कियां जब उनके निकट जातीं हमें दूर हटा देतीं। हमें आठवीं की लड़कियों पर गुस्सा आता थ हम सोचती थीं कि हम जब आठवीं में होंगी तो सातवीं की लड़कि साथ कभी इस तरह नहीं करेंगी।

और फिर हम आठवीं कक्षा में चढ़ीं। गर्मियों की छुट्टियों जब स्कूल खुले, हमसे भी वही बात हो गई, जो हमने सोचा था कभी नहीं करेंगी। यह तेरहवां-चौदहवां वर्ष, पता नहीं, कैसा होत यह शायद एक देहलीज़ होती है बचपन और जवानी के बीच में। इ लड़कियों का एक पांव देहलीज़ के इधर और एक पांव देहलीज़ के ता है।

इन गर्मी की छुट्टियों में बन्ती को एक पड़ोसी लड़का सवार ता रहा था। हर रोज़ छुट्टी के समय बन्ती हमें छिप-छिपकर

बातें सुनाया करती थी। अब हम आठवीं की लड़कियां आधी छुट्टी के समय सातवीं की लड़कियों को पास फटकने नहीं देती थी।

जिस दिन बन्ती हमें उस लड़के की बात न सुनाती, हमें ऐसा लगता जैसे उस दिन स्कूल में आधी छुट्टी हुई ही नहीं थी।

"मेरी तो हंस-बोल लेने की प्रीत है, और मुझे क्या लेना है उससे! और उसने क्या लेना है मुझसे!" कभी-कभी बन्ती हमें इस तरह कहकर टालने लग गई थी।

बन्ती साफ टालती, पर उसके चेहरे से हमें प्रतीत होने लगा था कि वह हंस-बोल लेने की प्रीत अब बन्ती के कण्ठ में से होकर उसके दिल में उतरने लग गई थी। तभी तो अक्सर उसकी जुबान रुक हो जाती और वह ज्यादा बातें नहीं कर पाती थी!

एक दिन उस पगली ने अपने हाथ में पेंसिल पकड़ी और गणित की कापी पर कोई बीस जगह उसका नाम लिख दिया—'राजू'''राजू''' राजू।' हमारी उस्तादनी ने उसकी कापी देख ली। कक्षा में तो उसे कुछ न कहा, पर जब आधी छुट्टी हुई तो उसे अपने कमरे में बुलाया और कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। बन्ती की मानो शामत आई हुई थी। पर हम तो बन्ती की सहेलियां थीं। हम सबके चेहरे उतरे हुए थे। काफी समय के बाद जब बन्ती बाहर आई तो रो-रोकर उसकी आंखें लाल हो चुकी थीं। कापी पर जहां-जहां राजू का नाम लिखा था, उस्तादनी ने रबर से उसे मिटा दिया था।

आठवीं कक्षा जब एक नाव की तरह वार्षिक परीक्षा के किनारे लग गई तो सभी लड़कियां यात्रियों की तरह एक-दूसरे से अलग हो गईं। हमारा यह स्कूल आठवीं कक्षा तक ही था। बहुत-सी लड़कियां अलग-अलग स्कूलों में दाखिल हो गईं। बन्ती सिलाई के स्कूल में चली गई।

दो साल बाद मुझे बन्ती के विवाह का कार्ड मिला। और लड़कियों को भी गया होगा। मैंने जल्दी से कार्ड पर लड़के का नाम पढ़ा, लिखा हुआ था—'कर्मचन्द'।

कार्ड पर 'राजू' के बजाय यद्यपि 'कर्मचन्द' लिखा हुआ था तो भी वह विवाह का कार्ड था, और हरएक विवाह को बधाई देने का हक होता

थे। मैं भी वन्ती के विवाह पर गई, उसे बधाई देने के लिए।

वन्ती के हाथों में मेंहदी, वन्ती की बाहों में कलीरे। मैंने वन्ती को बधाई दी।

मैं वन्ती से उस हम-जोल मेल की प्रीत के बारे में कोई बात नहीं करना चाहती थी, पर कुछ देर बाद वही मुझे एक तरफ ले गई और बोली :

"मेरी एक चीज संभालकर रख लोगी?"

"क्या?"

"एक रूमाल।"

मुझे यह पूछने की जरूरत नहीं थी कि रूमाल किसका है। रूमाल राजू का ही हो सकता था।

"इसमें ऐसी कौन-सी बात है। रूमाल तुम अपनी और चीजों के साथ ही कहीं रख लो न!"

"पर उसके एक कोने में उसका नाम लिखा हुआ है।"

"किसीको क्या पता, वह किसका नाम है?"

"सिर्फ 'राज' लिखा होता—कोई देखता, पूछता, तो मैं कह देती मेरी सहेली का नाम है। पर 'राजू' लिखा हुआ है। राजू तो लड़कियों का नाम नहीं होता!"

"किस चीज से लिखा हुआ है?"

"उसने एक दिन पेन्सिल से लिख दिया था। मैंने सुई लेकर धागे से कढ़ाई कर दी!"

"धागा उधेड़ डालो!"

"उधेड़ डालूं? यह तो मुझे ख्याल ही नहीं आया!" वन्ती ने एक लम्बी सांस भरी। कहने लगी, "तुम्हें याद है, एक दिन हमारी उस्तानी ने रबर लेकर मेरी कापी में से उसका नाम ही मिटा डाला था? आज मैं उसी तरह से उसका नाम उधेड़ देती हूं।"

मेरा मन भर आया। वन्ती ने मेरे सामने ट्रंक में से सुर्ख रेशमी रूमाल निकाला और सुई लेकर उसपर कढ़ा राजू का नाम उधेड़ने में लग गई। वन्ती ने ही तो उसका नाम काढ़ा था! वन्ती ही की कापी पर से

उसकी उन्मादनी ने राजू का नाम मिटा डाला था। विवाह के कार्ड पर समाज ने राजू का नाम न लिखने दिया; और आज वही बन्ती मेहदी लगे हाथों से रूमाल पर से उसका नाम उधेड़ रही है।

"चलो, छोड़ो अब इन बातों को। तुम खुद तो कहा करती थीं, 'यह हंस-बोल लेने की प्रीत है'...."

"सोचा तो यही था पर यह हंस-बोल लेने का प्यार मेरी हड्डियों में समा गया है। लहू में रच गया है।" बन्ती की आखें भर आई।

"सुना है तुम्हारे ससुरालवाले बहुत अमीर हैं! अच्छे कर्मोंवाली हो तुम? उसका नाम भी कर्मचन्द...।" कितनी देर बाद मैंने बात को मोड़ा।

"नामों से भी कर्म बनते हैं?" बन्ती ने सिर्फ इतना ही कहा।

"कभी चिट्ठी लिखा करोगी, या शाहनी बनकर हम सबको भूल जाओगी?"

"कहीं भूलना अपने बस में होता!" बन्ती ने एक लम्बी आह भरी। इस समय भी शायद उसके मन में सहेलियों का ख्याल नहीं था, सिर्फ राजू का ख्याल था।

"राजू को तुम चाहे भूलो, न भूलो, पर चिट्ठी तो तुम उसे लिख नहीं सकोगी! हमें कभी-कभी लिख दिया करना, चाहे चिट्ठी में राजू की ही बातें लिखना!"

"अच्छा, कभी-कभी मन की भड़ास निकाल लिया करूंगी, पर एक बात है।"

"क्या?"

"तुम मुझे उसकी बात कभी न लिखना। पता नहीं वे लोग कैसे हैं! बिलकुल गांव में रहते हैं। सुना है, चिट्ठी भी वहां हफ्ते में दो बार जाती है। पते पर ज़िला, तहसील, डाकखाना, गांव और न जाने क्या-क्या लिखना पड़ता है! शायद वे लोग मेरी चिट्ठी को पढ़कर ही मुझे दिया करेंगे!"

बन्ती को ससुराल गए आज पन्द्रह वर्ष हो गए हैं। पहले चार-पांच

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पर आज कहीं से अचानक पत्र आया है। पता नहीं यह कैसा प[illegible] है! इसमें सिर्फ उसके मन की आवाज नहीं, इसमें जैसे हर स्त्री के म[illegible] की आवाज है।

मेरा मन भरा हुआ है। उसने मुझे जवाब देने से रोका है, न[illegible] तो आज मैं उसे बहुत लम्बा पत्र लिखती और मेरा मन हलका [illegible] जाता।

आज मैंने उसके सारे पुराने पत्र निकाले हैं, (बीच के दो-तीन प[illegible] नहीं मिल रहे) और आज का पत्र भी सामने रखा हुआ है। एक बार सा[illegible] पत्रों को पढ़ रही हूं। एक स्त्री के मन की आवाज…।

……!

कैसा गांव है! जो आज का काम, वही कल का काम। यह पता न[illegible] लगता कि आज कौन-सा दिन है! सिर्फ जब गांव में डाकिया आता है [illegible] पता लगता है कि आज मंगलवार है या शनिवार। यहां पूरे हफ्ते में द[illegible] वार डाकिया आता है, जैसे शहरों में तेल-तांवा मांगनेवाले हफ्ते में [illegible] वार आते हैं।

जब डाकिया आता है, मुझे ऐसा लगता है मानो वह कह रहा [illegible] 'मंगलवार, टले भार तेल-तांवे का दान!' या 'शनिवार, टले भार तेल[illegible] तांवे का दान!' पर वे लोग पता नहीं कैसा तेल-तांवा दान करते हैं जिन[illegible] उनके मित्रों के, प्यारों के पत्र आते हैं। मैं किसके पत्र के लिए डाकिए क[illegible] रास्ता देखूं?

अच्छा तुम्हीं मुझे दो शब्द लिख देना। कोई बात न लिखना पत्र में। ा, इतना ही कि तुम्हें मेरा पत्र मिल गया। मैं इतनी बात के लिए ही 'किये का रास्ता देखूंगी।

तुम्हारी
बन्ती

..........!

तुमने बारात में मेरा ससुर देखा था, खिजाब-रंगी दाढ़ीवाला! गर तुम मेरी सास को देखो तो सच कहती हूं, हैरान रह जाओ। सास ी क्या, अभी वह पुत्रवधू भी नहीं लगती, बिलकुल क्वारी लगती है। म्र में वह मुझसे तीन-चार ही वर्ष बड़ी होगी, पर शारीरिक तौर पर हुत कोमल है, पतली-सी लचकती हुई हिरनी जैसी। चाहे वह मेरी ौतेली सास है, पर है तो सास ही न! अगर वह मेरी सास न होती, तो सच कहती हूं उसे अपनी सहेली बना लेती।

आज मंगलवार था। डाकिये को आना था। मुझे ख्याल आया, शायद तुम्हारा पत्र आए। मैं दरवाज़े में खड़ी होकर डाकिये का रास्ता देखने लगी। मेरी सास भी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

डाकिया आया। उसने मुझे एक पत्र दिया। मैंने सास के चेहरे की ओर देखा। उसका चेहरा बहुत ही उदास था। ऐसे लगता था जैसे आज ज़रूर ही किसीका पत्र उसके लिए आना था पर आया नहीं।

"भाभी, कोई चिट्ठी आनी थी तुम्हारी?" मैंने उसे इतनी उदास देखकर पूछा।

"मुझे किसकी चिट्ठी आएगी?" पहले तो उसने यह कहा और फिर कहने लगी, "आनी तो थी एक चिट्ठी, पर आई नहीं।"

"किसकी चिट्ठी?" मैंने फिर पूछा।

"ईश्वर की चिट्ठी! और मुझे किसकी चिट्ठी आएगी?" लगता था वह अभी रो पड़ेगी, पर वह रोई नहीं। या ऐसा रोना रोई जो किसी-को दिखाई नहीं दिया! देखा, हम स्त्रियां कैसा रोना रो सकती हैं! कभी-कभी मेरा दिल करता है, मैं भी ज़ोर से रोऊं और वह भी ज़ोर-ज़ोर

से रो गये।

तुम्हा
बन

..........!

सच मानो, जब से यहां आई हूं, मुझे यह घर कभी अपना नहीं लगा बिलकुल मेहमान-सी लगती हूं इस घर में। अब इस घर ने मुझे बांध लि है। एक छोटा-सा राजू आ गया है मुझे बांधनेवाला। घर के सभी लो उसे दीपक कहकर बुलाते हैं।

शाम के समय काफी ठण्डक उतर आती है। मैं एक लाल रेश रूमाल उसके सिर पर बांध देती हूं। लाल रूमाल में वह और भी सुन्द लगता है। मैं उसे गोद में लेकर देर तक उसका मुंह देखती रहती हूं।

तुम्हा
बन

..........!

मेरा राजू तीन वर्ष का हो गया है। तुम्हें अपने मन की बात बताऊं कभी-कभी जब मैं राजू के मुख की ओर देखती हूं तो देखते-देखते उसक मुंह बड़ा हो जाता है। उसका कद भी बड़ा हो जाता है। जैसे मेरा रा पच्चीस वर्ष का हो गया हो और मैं अभी बीस वर्ष की हूं। देखा, मैं कित पागल हूं!

बड़ा शरारती है मेरा राजू। अभी मेरे पास खेल रहा था। अभ रसोई में जा पहुंचा है। गर्म चूल्हे में पानी का गिलास उंडेल दिया है सारा चूल्हा फट गया है। मेरी सास बेचारी को दिन-भर लगाकर बनान पड़ेगा।

हां, तुम्हें एक बात बताऊं। मेरी सास चूल्हा क्या बनाती है, जैसे को बुत तराशती हो। तुमने कहीं ऐसा बांका चूल्हा नहीं देखा होगा! उसे चूल्हा बनाने का बहुत चाव है। थोड़े-थोड़े दिनों के बाद चूल्हा तोड़कर फिर से बनाने लगती है। जिस दिन वह अन्दर का चूल्हा बनाती है उस

दिन मैं बाहर के चूल्हे पर रोटी बनाती हूं। वैसे जहां तक बन पड़ता है, वह खाना पकाने का सारा काम स्वयं ही करती है। जब वह पन्द्रह-बीस दिन बाद रसोई का चूल्हा तोड़कर नया बनाने लगती है, उस दिन खाना पकाने के काम को हाथ नहीं लगाती। चूल्हा बनाने का तो उसे कोई रोग है! आए दिन मिट्टी में पानी डालकर बैठ जाती है, रसोई का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लेती है। मिट्टी गूंधती और साथ में गाती है।

वैसे मैंने कभी उसे गाते हुए नहीं सुना। गाना तो एक तरफ, उसे कभी मन भरकर बातें करते भी नहीं सुना; पर चूल्हा बनाते समय वह ऐसे गाती है, जैसे कोई बच्चा काते और लम्बा गीत शुरू कर दे! ईश्वर ही जाने उसके मन पर क्या गुज़रती है! माता-पिता ने भी तो उसकी जवानी से धोखा किया है! हीरे जैसी लड़की को तराज़ू में रखकर चांदी के रुपयों की एवज़ कक्कड़ के पल्ले बांध दिया!

अच्छा, दो शब्द जल्दी लिखना।

तुम्हारी
बन्ती

..........!

तुमने गीतों के बारे में पूछा है जो मेरी सास गाती है। पूरा गीत उसने कभी नहीं गाया। जब कभी एक टप्पा गाती है तो घण्टा-भर वही गाती रहती है।

आज भी उसने पुराने चूल्हे को तोड़कर नया बनाना शुरू किया है। रसोई का दरवाज़ा अन्दर से बन्द है। उसकी आवाज़ आ रही है :

'आ रे बदा! हाथ सेंक ले!
विरहा की आग हमने आंगन में
जलाई है।'

और मैं तुम्हें पत्र लिखने लग गई हूं। मैं बाहर आंगन में बैठी हुई हूं। उसने कोई और टप्पा शुरू किया, तो मैं तुम्हें लिखूंगी।

दिन ढल चला है। वही टप्पा सारे दिन गाती रही है। आज उसकी आवाज़ भी रुंधी हुई थी। कितनी देर तो उसकी आवाज़ निकली ही नहीं

गा-गाकर आवाज़ आई है :

'अगर नौकरी पर चले हो तो मुझे जेब में डाल लो।

जहां रात पड़े, मुझे निकालकर कलेजे से लगा लेना।'

हां, मुझे उसका एक गीत याद आया है। वह उसने आज तो नहीं गाया पर पहले गाया करती थी :

'आपने न सुख का सन्देशा भेजा
न आपने चिट्ठी भेजी है!
किसके हाथ मैं सुख का सन्देशा भेजूं,
किसके हाथ मैं चिट्ठी भेजूं?
लिखने के लिए कागज नहीं है
कलम के लिए 'काही' नहीं है
दिल का टुकड़ा मैं कागज़ बनाती हूं
और अंगुलियों को काटकर काही
आंखों का काजल स्याही बनाती हूं
और आंसुओं का पानी डालती हूं
परछाइयां ढलने पर चिट्ठी लिखने बैठी हूं
मेरी आंखों से आंसू बरस रहे हैं।'

रसोई का दरवाज़ा अभी भी बन्द है। बन्द दरवाज़े से भी जैसे गुज़र कर मेरा मन उसके मन में समा गया है। इन गीतों में भला कौन-सा गीत है जो उसके मन का नहीं और मेरे मन का नहीं?

तुम्हारी
बन्ती

....!

एक बात मैं तुम्हें लिखना भूल गई थी। मेरी सास को कई दिनों से रोज़ थोड़ा-थोड़ा बुखार हो आता है। लाख मिन्नतें करो, वह एक पल के लिए भी आराम नहीं करती।

"भाभी, इस तरह तो डाकिया सचमुच ही एक दिन ईश्वर की चिट्ठी ले आएगा! तुम खुद ही अपनी जान की दुश्मन बनी हो"—एक दिन मैंने

उसने कहा। पता है क्या कहने लगी? "तुम्हारा मुह मीठा करूं, अगर सचमुच ही कोई डाकिया उसकी चिट्ठी ले आए!" सच कहती हूं, उसका दुःख देखकर तो मेरे मन का भी दुःख मामूली बन जाता है।

ये इतने वर्ष और बीत गए! मैंने जान-बूझकर ही तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा। वैसे तुम्हारे नये शहर का पता मैंने ढूंढ लिया था। पता है, जब कभी मैं तुम्हें पत्र लिखने की सोचती थी तो मुझे लगता कि अगर मैंने तुम्हें पत्र लिखा तो पता नहीं कौन-सी यादें मुझे चारों ओर से घेर लेंगी! तब तो मैं कई दिन होश न संभाल सकूंगी। मेरे हाथों से चीज़ें गिरने लगेंगी और तरकारियां जलने लगेंगी। अब तो सारा घर मुझे ही संभालना पड़ता है।

इतने वर्ष मेरी सास रस्सी की तरह बल खाती रही। चारपाई पर लेटी हुई जैसे उसीमें खो जाती थी। उसका रंग कपास जैसा सफेद हो गया था।

तुम्हें याद है या नहीं, एक बार मैंने तुम्हें लिखा था कि मेरी सास मिट्टी का चूल्हा क्या बनाती है मानो कोई बुत तराशती हो। आए दिन, पुराना चूल्हा तोड़कर नया चूल्हा बनाने का उसका शौक बीमारी में भी नहीं गया था। मैं उसे ज़्यादा रोकती नहीं थी। जिस दिन वह मिट्टी गूंधती थी, उस दिन उसमें पता नहीं कहां से जान आ जाती थी।

लगभग पन्द्रह दिन की बात है, उसे खून की उल्टी आई थी। तब न तो हमें उसके जीने की आशा थी, न स्वयं उसे ही। दिन के समय जब मेरा देवर हकीम को बुलाने गया (मेरे ससुर का स्वर्गवास हो चुका है) तो मेरी सास ने मुझे अपने पास बुलाया, बोली:

"मेरा कहना मानोगी?"

"बताओ भाभी जो कुछ भी हो!" मेरा मन उमड़ रहा था। मैं उसकी चारपाई से सिर टेककर रोने लग गई थी।

"पगली कहीं की! रोती क्यों है? मैं तो एक-एक मिनट करके राह देख रही हूं कि कब यह प्राणों का पिंजरा टूटे और कब मेरी रूह आज़ाद हो जाए!"

"[illegible] भाभी, [illegible] !"

"[illegible] कुछ दिखाई [illegible]…"

"[illegible]…!"

"मुझे पता है, अभी तो मैं कह रही हूं। आखिरी बार, बस एक बार! [illegible] आ जाएगा !"

"भाभी, इस दुनिया से सारे मोह तोड़ चुकी हो। दुनिया में तुम्हारा मोह कभी हुआ ही नहीं। न अपने घरवालों से प्यार, न तुम्हें अपनी जान की परवाह, फिर चूल्हे उस चूल्हे से इतना मोह क्यों ?"

"चूल्हे के नीचे मेरा कुछ दबाया हुआ है,"—मौत के बिस्तर पर पड़ी मेरी भाभी हंसी और कहने लगी—"तुम यह न समझना कि मैंने मोहरों की [illegible] दबाई हुई हैं।"

"भाभी, तुम्हारा दिल मुझसे छिपा नहीं है। जिस घर में तुम्हारा मन भर गया है, उस घर में तुम मोहरें क्यों दबाओगी ? और मुझे भी मोहरों से कोई मोह नहीं !"

"यह मुझे पता है, तभी तो मैं तुम्हारे…"

"जो मन में है, निःसंकोच कह दो, भाभी ! मैं तुम्हारी पुत्रवधू हूं, बेटी भी हूं, और तुम्हारी सहेली भी तो हूं !"

भाभी आंखों से रोई मगर होंठों से कहने लगी, "कभी-कभी मैं तुम्हें कहा करती थी न कि आओ तुम्हें दाने भून दूं, मैं बहुत बड़ी भटियारिन हूं !"

"हां भाभी, मुझे याद है। पर मुझे ख्याल था कि तुम यों ही मजाक किया करती थीं। तुम भला भटियारिन कैसे हुईं ?"

"नहीं बन्नो, मैं सचमुच भटियारिन हूं, किसी भट्ठीवाले की भटियारिन। तुम अभी वह चूल्हा उखाड़ो तो नीचे की ईंटें भी उखाड़ देना। कच्ची मिट्टी से ही लीपी हुई हैं।"

"नीचे क्या है ?"

"छलनी—मेरे भटियारे की निशानी और साथ में एक अंगूठी भी—वह भी उसीकी निशानी !"

और भाभी ने अपने उखड़ रहे सांसों में मुझे बताया कि उन्हें अपने

गांव के एक लड़के से प्यार था। मोती नाम था उसका। माता-पिता को कसी ही मोती पसन्द आया। उन्होंने बेटी को कौड़ियों के मोल बेच दिया। विवाह को कुछ ही महीने हुए थे कि उदास मोती ने भटियारा बनकर उसके ससुराल के गांव में भट्ठी शुरू कर दी।

जब मेरी सास (रूपो नाम था उसका) दाने भुनाने गई तो मोती को भटियारा बना देखकर जैसे उसकी भट्ठी में खुद ही भुनने लग गई।

मोती ने जो कदम उठाया था, उससे भला उसका क्या बनता-सबरता? और रूपो का भी क्या सवरता? एक दिन रूपो उसके पांवों पर गिरकर रोई, 'तुम्हें मेरी कसम है जो तुम अपनी यह हालत बनाओ। भुने हुए बीज अब उगेंगे नहीं।' उसी दिन रूपो ने उसकी भट्ठी तोड़ डाली। कड़ाही उससे उठाई नहीं गई सो वह छलनी ही उठा लाई और उसे हुक्म दे आई कि अपने गांव वापस लौट जाए।

मोती न उसकी कसम लौटा सका और न उसका हुक्म टाल सका। अपनी अंगूठी, एक निशानी, उसने रूपो को दी और दूसरे दिन पता नहीं कहां चला गया! मोती भटियारा क्या बना, रूपो को सारी उम्र के लिए भटियारिन बना गया। इसने उसकी छलनी और अंगूठी अपने पास रख ली। अंगूठी पर मोती का नाम लिखा हुआ था। कहां छिपाती? चूल्हा तोड़कर उसने दोनों चीजें मिट्टी के नीचे दबा दीं और ऊपर नया चूल्हा बना दिया।

दिन-दिन-भर चूल्हे के पास बैठकर वह रोटियां क्या पकाती, जैसे मन के विचारों को बेलती-सेंकती रहती। कभी-कभी उसका दिल बहुत ही उदास हो जाता। वह चूल्हा तोड़ देती, उसकी निशानियों को गले लगाती रोती और गाती। फिर उसी तरह दोनों निशानियों को धरती के हवाले कर देती और ऊपर नया चूल्हा बनाकर उनकी रखवाली के लिए बैठी रहती।

भाभी की यह कहानी खत्म हुई, तभी उसकी सांस मन्द हो गई। उसे खून की एक और उल्टी आई और प्राणों का पिंजरा टूट गया, पंछी उड़ गया।

जितने वर्ष भाभी प्राणों के पिंजरे में बन्द थी, मोती की अंगूठी कभी

अपनी अंगूठी मैं नहीं पहनी। जब उसकी [illegible] आबाद हो गई, तब मैंने [illegible] को उतारा और अपने [illegible] उसकी अंगूठी में डाल दी।

मैंने ही उसे बतलाया था, मैंने ही [illegible] जानता था। लेकिन मुझे यह नहीं था कि यदि उसके हाथ में पड़ी हुई अंगूठी पर मोती का नाम पढ़ लेगा। और [illegible] दिन [illegible] उसके फूल चुनने, उस अंगूठी पर से उसके साथी का नाम मिट ही जाता था!

[illegible] मैंने अभी [illegible] है। अगले महीने मेरी मां [illegible] है और मैंने अपने पति को मना लिया है कि मैं चार दिन को मां के पास जाऊंगी। वहां भाभी के फूलों को बहा दूंगी। आप तुम समझ ही गई होगी! जिस प्रकार कुंए में छलनी डालकर ले जाऊंगी और उसके फूल छलनी में छानकर नहरों में बहा दूंगी!

हो मेरी सहेली! मेरी अपनी सहेली!! आज तुम्हें न लिखूं तो और किसको लिखूं? मैंने भी अपनी यादों को आज ढूंढ़-ढूंढ़कर देखा है, एक सुर्ख रूमाल उनके नीचे संभालकर रखा हुआ है। चाहे कोई बन्ती हो, चाहे कोई रूपो या चाहे कोई और, जिसने अपने मन की तहों में कोई रूमाल या कोई अंगूठी नहीं दबाई हुई होगी!

हम अभागिनें, जो किसीसे प्यार करती हैं, जन्म से भटियारिनें हो जाती हैं। दिल की भट्ठी पर अपनी सांसों को दानों की तरह भूनती हैं और यादों की छलनी में से वर्षों रेत छानती हैं।"

तुम्हारी
बन्ती : एक भटियारिन

धुआं और लाट

हरदेव ने जब धोती तहमत उतारकर पैण्ट पहन लिया और टाई की गांठ बांधने लगा तो उसे लगा, पिछले सात दिनों वाला हरदेव कोई और था और आज का हरदेव कोई और। पिछले सप्ताह वाले हरदेव को उसने चीखकर आवाज़ दी, "देव···!" देव उसने इसलिए कहा कि सारा सप्ताह वही उसे देव कहकर ही पुकारती रही थी। हरदेव कहना उसे मुश्किल लगा था।

"हां, हरदेव !" देव की आवाज़ आई।

"मुझसे ऐसे बिछुड़ जाएगा, दोस्त ?"

"शायद बिछुड़ना ही पड़े हरदेव, हम एक धरती पर रहकर भी एक ही धरती के आदमी नहीं लगते।"

"मैं तेरा इतना गैर हूं ?"

"गैर ? हां, गैर ही कह सकता हूं। मुझसे तू पहचाना भी नहीं जाता।"

"वस्त्रों के रंग और उनकी बनावट इतना अन्तर डाल देती है ?"

"नहीं हरदेव, सिर्फ वस्त्रों की बात नहीं। तू एक लेखक है, लेखक भी वह जिसका नाम हजारों आदमियों की जबान पर है, और मेरा नाम—मेरा नाम शायद पशुओं के सिवा और कोई नहीं जानता।"

हरदेव को उसकी बात पर कुछ ईर्ष्या-सी हुई। एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि कहे—देव, मेरे दोस्त ! तू मुझसे कहीं अधिक भाग्यशाली

है। तुम्हारे लोग मेरा नाम लेते हैं, पर मुझे कभी नहीं लगा कि मुझे कुछ [illegible] है। मेरा नाम कोई [illegible] था, जिसे [illegible] ने [illegible] और [illegible] नाम लेकर मुझे पुकारा है, और मुझे लगता है कि कभी तुम्हें [illegible] है। पर [illegible] से कुछ [illegible] नहीं।

"[illegible] हरदेव ! [illegible] याद दिलाता है, हर कालेज [illegible] है। [illegible] कालेज में मेरा स्वागत होता है। [illegible] जिनको नौजवान [illegible] होगी। [illegible] चारों ओर [illegible] कि [illegible] अपना नाम लिख दे। कितनी लड़कियां सब अपने [illegible] लिखेंगी [illegible]। लिख-लिखकर अपने हृदय की बात कहेंगी। तुझे याद नहीं, मेरा नाम सुनकर मेरी सीट बुक करने वाले क्लर्क का चेहरा [illegible] उठा था ? प्लेटफार्म पर [illegible] लोग डिब्बे के बाहर मेरा नाम पढ़कर मुझे देखने के लिए जमा हो गए थे ?"

"कुछ न कह देव ! यह सब ठीक है, पर इससे हृदय में पड़ा हुआ गड्ढा नहीं भरता।"

"फिर ?"

"तू मेरे साथ चल, जहां मैं रहूंगा, तू भी रहना। मैं अपने कामों की भीड़ से फुरसत पाकर तेरे साथ बातें किया करूंगा। मैं बहुत अकेला हूं, बिलकुल अकेला। सैकड़ों लोगों की भीड़ में भी अकेला, हजारों लोगों की भीड़ में भी अकेला। मैं तुझसे अपने मन की बात किया करूंगा।"

"मुझे तेरा शहर और तेरी सभ्यता झेल नहीं सकती हरदेव ! तेरी जबान भी तो मेरी समझ में सदा नहीं आती। तू कभी हिन्दुस्तानी कविता की बातें करता है, कभी अंग्रेजी और रूसी कविता की। अनेकों तू उनके नाम रखता है : कभी रोमाण्टिक कहता है तो कभी छायावादी, कभी यथार्थवादी तो कभी प्रतीकवादी, कभी प्रगतिशील तो कभी परम्परावादी और मेरी समझ में कुछ नहीं आता…"

हरदेव ने सिर झुका लिया। पिछले कितने ही दिन उसे याद हो आए। बरसों से उसके भीतर एक धुआं सुलगता रहा है और पिछले कुछ महीनों से उसे लगा है कि जैसे उस धुएं में उसकी सांस घुटने लग गई

थी। धर्मशाला के गवर्नमेंट कालेज ने उससे अनुरोध किया था कि वह उनके कालेज में आकर तीन भाषण दे—एक प्राचीन हिन्दुस्तानी कविता पर, एक आधुनिक हिन्दुस्तानी कविता पर और एक दूसरे देशों के साथ हिन्दुस्तानी कविता की तुलना पर। उसने हां कर दी थी। आठ दिन वह पुस्तकों पर सिर झुकाये बैठा रहा था। कितने कागज उसने तैयार किये थे, और फिर पन्द्रह दिनों के लिए समय निकालकर वह दिल्ली की शोर-गुल से भरी सड़कों को छोड़कर धर्मशाला के एक खामोश कोने में आ बैठा था। उसकी इच्छा थी कि दस-बारह दिन एकान्त में रहकर जमाने में मन में पड़ी हुई कहानियों को टटोलेगा और गीतों को शक्ल देगा और फिर अपने तीन भाषण खतम करके दिल्ली लौट जाएगा।

लेकिन धर्मशाला में होटल का एकान्त कमरा भी उसके मन को चैन न दे सका। वह रोज सुबह बस में बैठ जाता और जिस गांव में उसका दिल करता, उतर जाता। उसके साथ छोटा-सा थैला रहता था, जिसमें वह डबल रोटी, मक्खन, अण्डे और कुछ फल रख लेता, थर्मस में चाय डाल लेता, सिगरेट की दो डिब्बियां रख लेता, थोड़े-से कागज और एक कलम संभाल लेता और खादी की नीली चद्दर तथा हवा तकिए को तह करके थैले में डाल लेता। जहां दिल होता घूमता, जहां दिल होता अपनी नीली चद्दर बिछा, तकिये में हवा भरकर सो जाता'' और सांझ तक फिर गांव के समीप आ जाता और किसी गुजरती हुई बस में बैठकर रात को होटल लौट आता। तीन दिन इसी तरह गुजर चुके थे। चौथे दिन सांझ को वह सारा दिन पास के एक गांव नूरपुर के खेतों में गुजारकर लौट रहा था तो एक चिकने पत्थर से उसका पैर ऐसा फिसला कि संभलते-संभलते भी गिर पड़ा और चोट लग गई। टखना सूज गया और जहां बैठा हुआ था, बैठा रह गया। अंधेरा हुआ जा रहा था और उसके पैर ने एक भी कदम आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था।

अंधेरा गाढ़ने से काला हुआ जा रहा था कि उसे पास ही धान के पेड़ से पत्ते तोड़ती एक लड़की दिखाई दी। वह सोच रहा था—उस लड़की के स्थान पर कोई मर्द होता तो वह आवाज दे लेता। उस लड़की

भी मारकी मां ने भी देखी होगी। ब्रह्मी हंस पड़ी—"लक्ष्मी भी कभी दिखाई देती है ?"

"हां, कभी-कभी नज़र आती है।" हरदेव ने कहा।

"कब ?"

"जब वह दिखाई देती है, उसका नाम बदल जाता है।"

ब्रह्मी उसके मुंह की ओर देखती रह गई।

"कभी-कभी उसका नाम ब्रह्मी भी हो जाता है।" हरदेव ने कहा। सुनकर ब्रह्मी के मुंह पर जो लाली आई और उसका मुंह जिस तरह सुलग उठा—हरदेव को लगा—उसने मसान-भर के निखारों की कला देखी है, पर ऐसा चमत्कार कभी नहीं देखा था।

ब्रह्मी के बाप ने अपने बाबू के स्वागत के लिए एक दिन शहर से डबल रोटी और अण्डे मंगवाए। हरदेव मिन्नतें करता रहा कि अब उसे मक्की की रोटी और उबले हुए चावलों से बढ़कर कुछ अच्छा नहीं लगता, पर ब्रह्मी को और उसके घर वालों को अपनी मेहमान-नवाजी काफ़ी नहीं लग रही थी।

ब्रह्मी ने आग जलाई। हरदेव ने तवा रखकर ब्रह्मी को अण्डे बनाने बताए। ब्रह्मी चाय बना रही थी। लकड़ियां बुझ-बुझ जाती थीं। हरदेव ने कितनी फूंकें मारीं, पर धुआं घना हुआ जा रहा था। ब्रह्मी ने एक ज़ोर की फूंक लगाई, धुएं के बादल में से एक लाट निकली और चूल्हे के पास झुकी हुई ब्रह्मी का मुंह चमक उठा। यह पहली बार था जब हरदेव को लगा, बरसों से उसके मन में जो धुआं सुलगता रहता था, आज किसीने उसे ऐसी फूंक मारी थी कि उसमें से रोशनी की एक सुर्ख़ लाट निकल पड़ी थी—और उस लाट में ब्रह्मी का मुंह चमक उठा था। ब्रह्मी एक लड़की नहीं थी, मनुष्य का पवित्र प्यार थी।

अगले रोज़ ब्रह्मी ने एक अजीब बात की। उसने हरदेव से पूछा—"देव बाबू, तुमने कहा था न कि लक्ष्मी जब दिखाई देती है, उसका नाम बदल जाता है ?"

"हां।"

"कभी-कभी लक्ष्मी मर्द भी बन जाती है ?"

ह पहली बार थी जब हरदेव को उत्तर देने के लिए कुछ नहीं सूझा।
दी के मुँह की ओर देखता रह गया।
हरदेव के हवा-लगिए में बन्नो बड़े चाव से फूँकें लगाती और जब वह
ता, हरदेव उसके साथ इस तरह मुँह लगा लेता गोया उसमें से बन्नो
स आ रही हो।

सोच में डूबे हरदेव ने सिर उठाया : देव उसके सामने खड़ा था।
व ने अपनी गर्म स्लेटी पैंट पहन रखी थी और देव ने अपनी कमर के
नीली तहमद बाँध रखी थी।

"देव !"

"हाँ दोस्त !"

"तू मेरे साथ नहीं चलेगा ?"

"मेरे लिए और कहीं जगह नहीं हरदेव, मैं यहीं रहूँगा।"

"यहाँ ? बन्नो के घर ? क्या करेगा यहाँ ?"

"बन्नो जंगल के चश्मे से अकेली पानी लेने जाती है, मैं उसके साथ
जाया करूँगा। वह खेतों में जाकर घास काटती है, मैं उसका गट्ठर उठ-
वाया करूँगा। वह चूल्हे के आगे बैठकर रोटियाँ सेंकती है, मैं आग जलाया
करूँगा।"

"वह थोड़े दिन बाद ससुराल चली जाएगी !"

"मैं उसकी डोली के साथ जाऊँगा। वह अपना नया घर बनाएगी, मैं
उसका मजदूर बनूँगा।"

"पर देव ! तेरा उसके साथ रिश्ता क्या होगा ?"

"यही तो दुनिया वालों की बुरी आदत है, कि वे आदमी का आदमी
के साथ रिश्ता जानना चाहते हैं। वे आदमी को पीछे देखते हैं, रिश्ते को
देखते। क्या औरत का मुँह औरत का नहीं होता ? क्या वह जरूर माँ का
मुँह होना चाहिए ? बहन का मुँह होना चाहिए ? बेटी का मुँह होना
चाहिए ? बीवी का मुँह होना चाहिए ? औरत का मुँह औरत का क्यों नहीं
हो सकता ?"

"तू ठीक कहता है, देव, मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं।"

"कम से कम मुझे यह सवाल नहीं पूछना चाहिए।"

"मैं कुछ नहीं पूछता।"

"आज तुमने अपने ऑक्सीजन-तकिए को खाली नहीं किया हरदेव?"

"इसे ब्रह्मी ने अपने हाथों से भरा है।"

"तो फिर?"

"जितने दिन हो सका उसकी सांस के साथ मिला कर सांस लूंगा।"

"कितने दिन हरदेव? मेरी दुनिया की हवा इस दुनिया से अलग है। यह सभ्यता की हवा है। उसमें हर समय घृणा और युद्ध के कीटाणु होते हैं। यह सभ्यता की दौड़ में पीछे छूट गई दुनिया की हवा है, इसमें मुंजी और मक्की की बालियां सांस लेती हैं। मेरी दुनिया की हवा में ब्रह्मी की सांस घुट जाएगी।"

हरदेव ने कुछ नहीं कहा, तकिये का पेंच खोल दिया। ब्रह्मी की सांस ने एक बार हरदेव की सांस को स्पर्श किया, फिर मक्की की बालियों को छूकर आती हवा में मिल गई।…

लाल मिर्च

"डाक्टरों के इंजेक्शनों को छोड़ो यार, जिस घर के कुत्ते ने काटा है, उस घर की लाल मिर्च अपने ज़ख्म पर लगा लो।" एक दोस्त ने कहा।

"जिस घर के कुत्ते ने काटा है, अगर उस घर की कोई सुन्दर लड़की तुम्हारे ज़ख्म पर पट्टी बांध दे...। लड़कियां भी तो लाल मिर्च होती हैं।" दूसरा दोस्त बोला।

कालेज के सभी दोस्त लड़के हंस पड़े। और वह, जिसे कुत्ते ने काटा था, हंसकर कहने लगा, "यार नुस्खा तो अच्छा है, पर तुमने आज़माया हुआ है न?"

गौतम ने उस की पीढ़ी के अनगिनत दर्द पर पांव रखा हुआ था, और गौतम को लगा कि इस दर्द पर जवानी के आंगन का एक कुत्ता दुबककर बैठा हुआ था, और आज उसने अचानक पागलों की तरह उसकी टांग में से मांस नोच लिया था।—उस दिन से गौतम का मन अपने ज़ख्म पर लगाने के लिए लाल मिर्च जैसी लड़की ढूंढने लग पड़ा था।

लड़कियां तो गौतम के कालेज में भी थीं, पड़ोस के घरों में थीं, उस शहर की गलियों में भी और अन्य सब शहरों में भी। पर जिस लड़की को मैं ढूंढ रहा हूं," गौतम सोचता, "वह कहां है?"

और फिर गौतम लड़कियों को ऐसे देखकर [illegible] से [illegible] का

[illegible] जाता है। [illegible], [illegible], [illegible] हुए [illegible], [illegible], गोल···
और [illegible] के [illegible] की नज़र बांध लेता, उसे सभी [illegible] याद आ जाती—सहमी हुई हरनी जैसी लड़की, [illegible] जैसी लड़की, [illegible] के [illegible] जैसी लड़की, चांद की फांक जैसी लड़की ··· और फिर [illegible]—कोई नहीं, इनमें से कोई भी नहीं, उसे तो [illegible] जैसी लड़की चाहिए।''

वैसे तो कालेज के सभी लड़कों में [illegible] और [illegible] की बजाय [illegible] की बातें [illegible] हो गई थी, पर गोपाल की हर बात को अपने पर लाने के लिए जैसे 'लड़की' शब्द के दरवाज़े में से ज़रूर गुज़रना पड़ता था।

कभी रेडियो पर नूरजहां की आवाज़ आती, ''तुम्हारे मुख पर काले रंग का तिल है, ऐ सियालकोट के लड़के !'' तो गोपाल अपने लाल होंठों पर एक मोटे तिल को अंगुली से टटोलने लग जाता और फिर जैसे नूरजहां को सम्बोधन करके कहता, ''ज़ालिम, हर बार कहती है 'सियालकोट के लड़के', 'सियालकोट के लड़के', कभी इसकी जगह लायलपुर के लड़के भी तो कहा कर।''···नूरजहां ने तो गोपाल की बात कभी न सुनी पर कालेज के लड़कों ने ज़रूर गाना शुरू कर दिया, ''ऐ लायलपुर के लड़के···।'' पर इनसे तो गोपाल की जबान और भी सूख जाती थी। उसे और प्यास लगती थी—कभी नूरजहां, कभी एक लड़की यह बात कहे !

भुने हुए चने बेचने वाला कहता, ''बम्बई का बाबू मेरा चना ले गया,'' तो गोपाल हंसता, ''चना ले गया तो ऐसे कहता है जैसे इसकी लड़की निकालकर ले गया है।''

ऐनकों वाली लड़कियां गोपाल को लड़कियां नहीं लगती थीं। ''जब भी आंखों को देखना हो, पहले कांच की दीवार पार करनी पड़ती है।'' गोपाल कहता और उन लड़कियों को लड़कियों की सूची में से निकाल देता।

किसी लड़की ने ऊंची धोती बांधी हुई होती, पांव में जुरावें पहनी होतीं, हाथ में छतरी पकड़ी होती, तो गोपाल हंसकर मुंह फिरा लेता,

"यह लड़की थोड़ी है, यह तो मास्टरनी है, मास्टरनी। जो विद्यार्थी गणित में कमज़ोर हो, वह मास्टरनी से शादी कर ले…"

किसी लड़की ने गहरे रंगों के कपड़े पहने होते या बाँह में चूड़ियाँ ही बहुत ज़्यादा पहनी होतीं तो गोपाल कहता, "यह तो रंगों का विज्ञापन है। लड़की तो बीच में से मिलती ही नहीं, बस पूरी की पूरी चूड़ियों की दुकान है।"

किसी की बरात जा रही होती, गोपाल उदास हो जाता, "च…च …च बेचारे का दिवाला निकल गया…" और गोपाल कहता, "जब मनुष्य प्रेमी बनने से पहले पति बन जाता है तो समझो अब बेचारे के पास पूंजी बिल्कुल नहीं रही, और उसने घबराकर दीवालिया होने की अर्ज़ी दे दी है।"

"शायद वह किसी प्रेमिका से ही शादी करने जा रहा हो।" गोपाल का कोई दोस्त कहता।

"नहीं यार, ज़ुल्फ़ को सर करने में उम्र लगती है। ग़ालिब की डोमनी और लोर्का की जिप्सी, इनके दरवाज़े पर कभी बरात नहीं जाती।" और गोपाल कई वर्ष तक इस ज़ुल्फ़ की बातें करता रहा जिसके सर करने में उसने उम्र लगानी थी।

और गोपाल ने टटोल-टटोलकर देखा—काली रात जैसे बाल, पर उसे किसी रात ने नींद न दी। सघन जंगल जैसे बाल, पर वह किसी जंगल में खो न सका। समुद्र की लहरों जैसे बाल, पर वह किसी लहर में गोता न लगा सका। और गोपाल ने उम्र के जो साल एक ज़ुल्फ़ को सर करने में लगाने थे, वे ज़ुल्फ़ को ढूंढने में ही खोते रहे। और फिर गोपाल अपने सालों के खो जाने से घबरा गया।

"तुम भी अब हमारी तरह दीवालियापन की अर्ज़ी दे दो यार।" कालिज के पुराने साथियों में से कोई जब गोपाल को मिलता मज़ाक करता।

उम्र के अठारहवें वर्ष में जवानी के पागल कुत्ते ने गोपाल की टांग को काटा था और उस ज़ख्म पर लगाने के लिए गोपाल एक लाल मिर्च जैसी लड़की ढूंढ रहा था, पर अब उम्र के बत्तीसवें वर्ष में उस ज़ख्म का

ज़हर उसके सारे शरीर में फैलने लग गया था।

अब गोपाल सोचने लग गया था, सच न मालिक है, न नौकरी। वह गोपाल है, या एक ईश्वरदास, या एक जोगिन्दर, या एक अल्लारक्खा। …और उसने फिर अचानक दीवालिया होने की अर्जी दे दी।

"कहो यार, आज भाभी के घर में [illegible] आएगी या किसी के घर में?"

"सुनाओ, भाभी कैसी है?"

"और कुछ नहीं तो हम तुम्हारी लाल मिर्च के देवर तो बन ही जाएंगे।"

"बेशक सोने की अंगूठी की जगह हीरे की अंगूठी ही देनी पड़े, भाभी का घूंघट जरूर उठाएंगे।"

गोपाल अपने दोस्तों के मजाक को अपने हाथ पर विवाह के लाल धागे की तरह बांधे जा रहा था और हंसता हुआ कह देता था, "मास्टरनी है, मास्टरनी। ऐनक भी लगाती है तुम्हारी भाभी।"

मां ने जब रिश्ता लिया था, गोपाल से कहा था कि अगर वह चाहे तो किसी बहाने वह लड़की दिखा देगी। पर गोपाल ने स्वयं ही इन्कार कर दिया था—"जब दीवालिया होने की अर्जी ही देनी है तो…"

डोली दरवाज़े पर आ गई।

"सुन्दर है वह, घर का सिंगार है।" उसे रुपये देते समय गोपाल की ताई कह रही थी। और गोपाल सोच रहा था—जब लोग दरवाजे के सामने कोई भैंस लाकर बांधते हैं, तब भी यही बात कहते हैं—भैंस तो घर का सिंगार होती है।' और जब लोग डोली लेकर आते हैं तब भी यही बात कहते हैं—'बहू तो घर का सिंगार होती है।' और फिर भैंस में और बहू में जो फर्क होता, वह कहां गया?—और फिर गोपाल खुद ही हंस देता—"यह भी वही फर्क है जो एक प्रेमी और दूल्हे में होता है।

गोपाल की पत्नी न ही इतनी सुन्दर थी, न ही इतनी कुरूप। आम लड़कियों जैसी लड़की, देखने में बस ठीक ही लगती। और गोपाल को न कोई चाव था, न कोई शिकायत। वह भांति-भांति के कपड़े पहनती पर गोपाल उसे कभी 'रंगों का विज्ञापन' न कहता। और वह सोहा

की चूड़ियां और दहेज के कड़े सब कुछ एकसाथ पहन लेती, गोपाल उसे कभी 'ज़ेवरों की दुकान' न कहता।

आजकल गोपाल को जवानी के शुरू के दिनों में पढ़ा हुआ एक अंग्रेज़ी उपन्यास याद आया करता था जिसमें अपने सपनों की लड़की ढूंढने के लिए कोई उम्र लगा देता है, पर उसे ढूंढ नहीं पाता, और फिर मरते समय अपने बेटे को अपनी सारी रूपरेखा और सारी लगन देकर कह जाता है कि वह इस किस्म की आंखों वाली, इस किस्म के नक्शों वाली और इस किस्म के बालों वाली लड़की को ज़रूर ढूंढे। और फिर सारी उम्र की खोज के बाद उसका बेटा मरते समय यही बात अपने बेटे को लिखकर दे जाता है।

'ज़ुल्फ़ को सर करने में ग़ालिब ने सिर्फ़ एक ही उम्र का अन्दाज़ा लगाया था, पर' गोपाल सोचता, 'जीवन की हार ग़ालिब के अन्दाज़े से बहुत बड़ी है।' और आजकल गोपाल सोच रहा था, उसके घर एक पुत्र जन्म लेगा, हूबहू उसकी मुखाकृति, हूबहू उसका दिल, हूबहू उसके सपने और फिर जब उसका पुत्र जवान होगा, वह एक लाल मिर्च जैसी लड़की ज़रूर ढूंढेगा।...और फिर वह सारा संसार अपने पुत्र की आंखों में देखेगा।

"आज मैं बर्फ वाला पानी नहीं पिऊंगी," एक दिन गोपाल की पत्नी ने शिकंजवी का गिलास अपनी सास को लौटाते हुए कहा। और मां जब उसके लिए चाय बनाने के लिए रसोई में गई तो गोपाल ने अपनी पत्नी को हल्का-सा मज़ाक किया, "मैं सारा महीना सपने इकट्ठे करता हूं और तुम महीने के बाद मेरे सारे सपने तोड़ देती हो...।"

शायद यह इन्हीं शब्दों का असर था कि अगले महीने गोपाल की पत्नी के दिन लग गए और गोपाल की बांहों में जैसे अभी उसका बेटा खेलने लग गया।

खट्टी या नमकीन चीज़ तो इसने कभी मांगी ही नहीं, हमेशा इसका मन मीठी चीज़ों के पीछे भटकता है, ज़रूर बेटा होगा। तुम्हारे जन्म के समय मुझे भी गुड़ की खीर अच्छी लगती थी।" मां जब कहती, गोपाल को लगता, अब तो उसका बेटा मीठी बातें भी करने लग गया है।

यह भी सही कि गोपाल को [illegible] के समान प्रतीत हुए। और फिर यह भी, सुख और [illegible] इकट्ठी होने लगी।

इसके बाद का सब जल्दी-जल्दी किया गया था। गोपाल ने बाहर बरामदे में लेटकर अख़बार, [illegible] और पुस्तकें [illegible] सामने इस तरह रखी हुई थीं जैसे [illegible], पर फिर [illegible] थीं। पर गोपाल कुनबे का कभी कोई [illegible], कभी कोई। और फिर जो पत्नियां सामने आ जातीं, [illegible]। दरवाज़े के पास वह जैसे बैठा था और उसके कान अन्दर की आवाज़ सुनने के लिए लगे थे।

"ज़रा हिम्मत कर बेटी। बेटी का ऐसे ही जन्म होता है।…बस मिनट भर के लिए दांतों तले ज़ुबान दबा…" रह-रहकर दाई की आवाज़ आ रही थी। और गोपाल प्रतीक्षा कर रहा था, 'अभी…अभी वह कहेगी …लाल-लाल बच्चा गोपाल का है। यह लो बेटा…।'

एक बार दाई बाहर आई थी। कहने लगी, "बेटा गोपाल, ज़रा जाकर थोड़ा-सा शहद तो ला दे। देखकर लाना, नया शहद हो।"

गोपाल वहां से जाना नहीं चाहता था। 'क्या पता बाद में…जल्दी ही कुछ हो जाए… मैं उसकी पहली आवाज़ सुनूंगा,' और वह दाई से कहने लगा, "शहद की याद अब तुम्हें आई है।…यह सारा काम पड़ा हुआ है मेरे सामने। कल मुझे यह सारा काम दफ्तर में देना है।"

"तुम मर्दों को तो अपने काम की ही पड़ी रहती है। आखिर बूढ़ी उम्र है, कई बातें भूल जाती हूं।" दाई यह कह रही थी कि गोपाल की मां ने सारी मुश्किल दूर कर दी। कहने लगी, 'हमारे यहां कभी किसीने शहद-वहद नहीं दिया। हम तो अंगुली पर थोड़ा-सा गुड़ लगाकर मुंह में डाल देते हैं।"

"अच्छा गुड़ ही सही।" और दाई अन्दर चली गई थी।

गोपाल के कान फिर दरवाजे की ओर लगे हुए थे, पर दाई का 'मिनट भर' पता नहीं कितना लम्बा था। वह अभी तक कह रही थी, "मिनट भर के लिए दांतों तले ज़ुबान दबा…ज़रा अपनी तरफ से ज़ोर लगा न नीचे को।"

और फिर अचानक बच्चे के रोने की आवाज़ आई। गोपाल का

साम जैसे किसीने हाथ में पकड़ लिया हो। वह न नीचे को आ रहा था, न ऊपर जा रहा था। और अभी तक दाई की आवाज नहीं आई थी। उसे बच्चे की आवाज की अपेक्षा दाई की आवाज की अधिक प्रतीक्षा थी।

और फिर दाई की आवाज आई, "लड़की।"

गोपाल की कुर्सी कांप गई। उसकी मां शायद पानी या तौलिया लेने बाहर आई हुई थी। गोपाल के होंठ कांपे, 'मां, लड़की!'

"नहीं बेटा, नहीं, तू भी पागल है। जब तक 'औल' नहीं गिरती, दाइयां यही कहती हैं। अगर वह कह दे कि बेटा हुआ है तो मां की खुशी के कारण औल ऊपर चढ़ जाए।" और मां जल्दी-जल्दी अन्दर चली गई।

"यह 'औल' पता नहीं क्या बला है। न जल्दी गिरती है, न दाई आगे कुछ बोलती है।" गोपाल की कुर्सी अब यद्यपि पहले की तरह उतनी कांप नहीं रही थी, पर फिर भी गोपाल ने उसे दीवार के साथ लगा लिया था।

"बेटी हो या बेटा, जो भी जीव हो भाग्यवान् हो।" दाई की आवाज आई।

"बेटी तो लक्ष्मी होती है। इस बार बेटी, तो अगले साल बेटा।" मां दाई से कह रही थी।

"लड़की है कि रेशम का धागा है..." मां कह रही थी या दाई कह रही थी, इस बार गोपाल से आवाज पहचानी नहीं गई। उसकी कुर्सी कांपी और कुर्सी के कारण जैसे सारी दीवार डगमगा गई। उसे लगा, वह बूढ़ा हो गया था, लाला गोपालदास। और उसकी पत्नी अपने घुटनों को दबाती हुई कह रही थी, 'लड़की इतनी बड़ी हो गई है, कोई लड़का देखो न। कहां छुपाऊं इस आंचल की आग को? ऐसा रूप...ऊपर से जमाना बुरा है...।' और फिर उसके दरवाजे पर बरात आ गई...उसके दामाद ने उसके पांव छुए...उसकी बेटी लाल सुर्ख कपड़ों में लिपटी हुई थी...वह डोली के पास जाकर उसे प्यार देने लगा...उसकी बेटी...बिलकुल लाल मिर्च...।

लाल मिर्च...लड़की...लाल मिर्च...और गोपाल को लगा, आज...आज किसीने मिर्चें उठाकर उसकी आंखों में डाल दी थीं।

दू

घोड़ी हिनहिनाई। गुलेरी दौड़कर अन्दर से बाहर आई। उसने घोड़ी की आवाज पहचान ली थी। यह घोड़ी उसके मायके की थी। उसने घोड़ी की गर्दन के साथ अपना सिर टेक दिया। जैसे यह घोड़ी की गर्दन न होकर उसके मायके का द्वार हो।

गुलेरी का मायका चम्बे शहर में था। ससुराल का गांव लक्कड़मंडी एवं खजियार के रास्ते में एक ऊंची समतल जगह पर था। खजियार से लगभग एक मील आगे चलकर पहाड़ी का एक ऐसा मोड़ आता था, जहां पर खड़े होकर चम्बा शहर बहुत दूर और बहुत नीचा दिखाई देता था। कभी-कभी गुलेरी जब उदास हो जाती तो अपने मानक को साथ लेकर उस मोड़ पर आकर खड़ी हो जाती। चम्बे शहर के मकान उसको एक जगमगाते बिन्दु के समान दिखाई देते, फिर वे बिन्दु उसके मन में एक चमक पैदा कर देते।

मायके वह वर्ष-भर में एक बार आश्विन के महीने में जाती थी। हर साल इन दिनों उसके मायके में चुगान का मेला लगता था। माता-पिता उसको लिवाने के लिए आदमी भेज देते थे। सिर्फ गुलेरी के ही नहीं गुलेरी की सभी सहेलियों के मायके अपनी लड़कियों को बुलावा भेज देते थे। सभी सहेलियां जब एक-दूसरे के गले मिलतीं तो वर्ष-भर की सभी ऋतुओं के दुःख-सुख की बातें एक-दूसरी से कह-सुन लेतीं और अपने मायके की गलियों में हिरनियों के समान चौकड़ी भरती स्वच्छन्द घूमतीं।

दो-दो, तीन-तीन बच्चों की माताएं बड़े बच्चों को उनके दादा-दादी के पास छोड़ आती और गोद वाले को मायके पहुंचते ही ननिहाल वालों के हवाले कर देती। मेले के लिए नये कपड़े सिलवाती। चुनरियों को रंगवातीं और अबरक लगवाती। मेले में से कांच की चूड़ियां और चांदी की बालियां खरीदतीं। मेले में से खरीदी हुई सुगन्धित साबुन की टिकियों को अपने बदन पर ऐसे मलतीं जैसे वह अपने खोये हुए कुंवारे यौवन की गन्ध को फिर से सूंघना चाहती हों।

गुलेरी कितने ही दिनों से आज के दिन की इन्तजार कर रही थी। आश्विन का आसमान जब सावन-भादों की बरसात के साथ हाथ-पांव धोकर निखर बैठता था, गुलेरी और गुलेरी जैसी ससुराल में बैठी लड़कियां पशुओं को दाना-पानी डालतीं, सास-ससुर के लिए दाल-चावल रांधतीं और हर रोज हाथ-पांव धोकर बन-संवर बैठतीं तो मन में सोचने लगतीं आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कोई न कोई उनके मायके से उनको लेने के लिए आता होगा।

आज गुलेरी के घर के दरवाजे के सामने उसके मायके की घोड़ी हिनहिनाई तो गुलेरी चंचल हो उठी। घोड़ी लेकर आए नत्थू नाई को गुलेरी ने बैठने के लिए चौकी दी।

गुलेरी को कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। उसके मुंह का रंग स्वयं सब कुछ बता रहा था। मानक ने तम्बाकू का एक लम्बा कश खींचा और आंखें बंद कर लीं, जाने उसमें तम्बाकू का नशा न झेला गया था गुलेरी के मुंह का रंग।

"इस बार तो मेला देखने आएगा न, चाहे दिन का दिन ही सही।" गुलेरी ने मानक के पास बैठकर बड़े दुलार से कहा।

मानक के हाथ कांपे, उसने हाथों में पकड़ी हुई चिलम को एक ओर रख दिया।

"बोलता क्यों नहीं?" गुलेरी ने रोष के साथ कहा।

"गुलेरी, एक बात कहूं?"

"मैं जानती हूं तूने क्या कहना है। क्या यह बात मुझे कहनी चाहिए? साल-भर में एक बार तो मैं मायके जाती हूं। फिर तू मुझे ऐसे क्यों

रोकता है ?"

"पागल तू कैसे मुझे न जाने को कुछ नहीं कहता ?"

"फिर इस बार क्या कहता है ?"

"इस बार ... इस बार ..." मानक के मुंह से एक लम्बी आह निकल गई।

"मेरी मां जो मुझे कुछ कहती ही नहीं, फिर तू क्यों रोकता है ?" गुलेरी की आवाज में [illegible] जैसी खिज थी।

"मेरी मां ..." मानक ने अपना मुंह बंद कर लिया। जैसे आगे की बात को उसने अपने अंदर दबा लिया हो।

दूसरे दिन गुलेरी मुंह अंधेरे सज-संवरकर तैयार हो गई। गुलेरी का न कोई बाल बच्चा था, न ढोर डंगर। न किसी को ससुराल में छोड़ना था न किसी को मायके ले जाना था। मानक ने घोड़ी पर काठी कसी और गुलेरी के सास-ससुर ने उसके सिर पर प्यार दिया।

"चल, दो कोस मैं भी तेरे साथ चलूंगा।" मानक ने कहा। गुलेरी ने खुश होकर मानक की बांसुरी अपने आंचल में रख ली।

वे नाजियाल पार कर गए। आगे एक कोस और लांघ गए। फिर चम्बे की उतराई आरम्भ हो गई। गुलेरी ने आंचल में से बांसुरी निकाली और मानक के हाथ में थमा दी।

सामने कठिन उतराई थी। पांव जैसे फिसल रहे थे। गुलेरी ने मानक का हाथ पकड़ा और रुककर कहने लगी :

"बजाता क्यों नहीं बांसुरी ?"

सोच भी जैसे उतराई उतर रही थी। मानक का मन फिसलता जा रहा था। गुलेरी ने जब मानक का हाथ पकड़ा तो मानक ने चौंक- उसकी ओर देखा।

"बजाता क्यों नहीं बांसुरी ?" गुलेरी ने फिर कहा।

मानक ने बांसुरी होंठों के साथ लगाई, फूंक मारी पर बांसुरी में ऐसा स्वर निकला जैसे बांसुरी की जबान पर छाले पड़ गए हों।

"गुलेरी तू मत जा मैं तुझे फिर कहता हूं मत जा। इस बार ? जा।"

मानक ने हाथ की बांसुरी गुलेरी को वापस कर दी।

"कोई बात भी तो हो? अच्छा तू मेले के दिन चला आइयो। मैं तेरे साथ लौट आऊंगी। पीछे नहीं रहूंगी, सच्च कहती हू, पक्की बात।"

मानक ने कुछ न कहा पर उसने गुलेरी के मुह की ओर ऐसे देखा जैसे वह कहना चाहता हो 'गुलेरी यह बात पक्की नहीं। यह बहुत कच्ची है।' पर मानक ने कुछ न कहा···जैसे उसको कुछ कहना न आता हो।

गुलेरी और मानक सड़क से थोड़ा-सा हटकर एक पत्थर के साथ अपनी पीठ टेककर खड़े हो गए। नत्थू ने दस कदम आगे बढ़कर घोड़ी खड़ी कर दी थी पर मानक का मन कहीं भी खड़ा नहीं हो रहा था।

मानक का मन घूमता-फिसलता आज से सात वर्ष पीछे तक चला गया। यही दिन थे जब मानक अपने मित्रों के साथ इस सड़क को लांघता हुआ चौगान का मेला देखने चम्बे गया था। मेले में कांच की चूड़ियों से लेकर गायों-बकरियों तक कुछ न कुछ खरीद और बेच रहे थे। इसी मेले में मानक ने गुलेरी को देखा था और मानक को गुलेरी ने। फिर दोनों ने एक-दूसरे का दिल खरीद लिया था।

वे दोनों अवसर देखकर एक-दूसरे को मिले थे। 'तू तो दुधिया बुट्टे जैसी है।' मानक ने यह कहकर गुलेरी का हाथ पकड़ लिया था।

'पर कच्चे बुट्टे को पशु मुह मारते हैं।' यह कहकर गुलेरी ने हाथ छुड़ा लिया था और मुसकराते हुए कहा था,

'इन्सान तो बुट्टे को भून कर खाते हैं। यदि साहस है तो मेरे पिता से मेरा रिश्ता माग ले।'

मानक के दूर-पास के सम्बन्धियों में जब भी किसी का ब्याह होता था तो लड़के वाले मूल्य चुकाते थे।

मानक डर रहा था कि पता नहीं गुलेरी का पिता कितना रुपया माग ले। पर गुलेरी का बाप खाता-पीता आदमी था। और फिर वह दूर शहर में भी रह आया था। वह अपने मन में यह निश्चय किए हुए था कि वर वालों से बेटी के पैसे नहीं लूगा। जहा पर अच्छा घर और वर मिलेगा वहीं पर अपनी लड़की का ब्याह कर दूगा। मानक के इस काम में कोई कठिनाई नहीं हुई। दोनों के दिल मिले हुए थे। दोनों ने ब्याह का रास्ता

दूर ही रहा था।

"आज तू इतना उदास क्यों है ? तू मुझे अपने मन की बात क्यों नहीं बताता ?" गुलेरी ने मानक के कंधे को हिलाते हुए कहा।

मानक ने गुलेरी की ओर ऐसे देखा जैसे उसकी जबान पर ताले पड़ गए हों।

कोई चिड़िया चहचहाई। गुलेरी को आज का रास्ता स्मरण हो आया। वह जाने के लिए तैयार हुई और मानक से कहने लगी :

"आगे चलकर चीड़ों का वन आता है। कोई दो मील होगा! तू जानता है न, उस वन को पार करने वालों के कान बहरे हो जाते हैं।"

"हां," मानक ने धीरे से कहा।

"मुझे ऐसा लग रहा है जैसे हम उस वन में से गुज़र रहे हैं। तुझे मेरी कोई बात सुनाई ही नहीं देती है।"

"तू सच कहती है गुलेरी। मुझे तुम्हारी कोई बात सुनाई नहीं देती और तुझे मेरी कोई बात सुनाई नहीं देती।" मानक ने एक लम्बी सांस ली।

दोनों ने एक-दूसरे के मुंह की ओर देखा। पर दोनों एक-दूसरे की बात नहीं समझ सके।

"मैं अब जाऊं ? तू वापस चला जा। तू बड़ी दूर आ गया है।" गुलेरी ने धीरे से कहा।

"तू इतना रास्ता पैदल चलती आई, घोड़ी पर नहीं बैठी। अब घोड़ी पर बैठ जाना।" मानक ने उसी प्रकार धीरे से कहा।

"यह ले पकड़ अपनी बांसुरी।"

"तू अपने साथ ही ले जा।"

"मेले के दिन आकर बजाएगा ?" गुलेरी हंस दी। उसकी आंखों में धूप चमक रही थी।

मानक ने अपना मुंह दूसरी ओर कर लिया। शायद उसकी आंखों में बादल उमड़ आए थे।

गुलेरी ने मायके का रास्ता लिया और मानक लौट आया।

"मां…!" घर पहुंचकर मानक इस तरह खाट पर गिर पड़ा जैसे

वह बड़ी मुश्किल से खाट तक पहुंच पाया हो। "बड़ी देर लगाई। मैं तो सोचती थी शायद तू उसको आखिर तक छोड़ने चला गया है।" मा ने कहा।

"नहीं मा, आखिर तक नहीं गया। रास्ते के बीच ही छोड़ आया हूं।" मानक का गला रुंध गया।

"औरतों की तरह रोता क्यों है ? मर्द बन।" मा ने रोष से कहा।

मानक के मन में आया कि वह मा से कहे : "पर तू तो औरत है, एक बार औरतों की तरह रोती क्यों नहीं ?"

मानक को गुलेरी की एक बात स्मरण हो आई।

'हम नीले फूलों वाले वन में से गुजर रहे हैं जहां पर सभी के कान बहरे हो जाते हैं।' मानक को ऐसे महसूस हुआ कि आज किसीको उसकी बात सुनाई नहीं देती। सारा ममार जैसे नीले फूलों का वन है और सभी-के कान बहरे हो गए हैं।

सात वर्ष हो गए थे। गुलेरी की अभी तक कोख नहीं हरियाई थी। मा कहती थी, "अब मैं आठवां वर्ष नहीं लगने दूंगी।" मा ने पांच सौ रुपया देकर भीतर ही भीतर मानक के दूसरे ब्याह की बात पक्की कर ली थी। वह उस समय की इन्तजार में थी कि जब गुलेरी मायके जाएगी, वह नई बहू का डोला घर ले आएगी।

इसके बाद मानक को ऐसे महसूस हुआ जैसे उसके दिल का मास सो गया था। गुलेरी का प्यार उसके दिल में चुटकी भर रहा था। पर उसके दिल को कुछ महसूस नहीं हो रहा था। नई बहू की कोख से उत्पन्न होने वाले बच्चे की हंसी उसके दिल को गुदगुदा रही थी, पर उसके दिल को कुछ नहीं हो रहा था। जाने उसके दिल का मांस सो गया था।

सातवें दिन मानक के घर उसकी नई बहू बैठी हुई थी।

मानक के सभी अंग जाग रहे थे, एक उसके दिल का मांस सोया हुआ था। दिल के सोये हुए मास को उसके जाग रहे अंग सभी स्थानों पर ले गए थे। नई ससुराल में भी और नई बहू के बिछौने पर भी।

मानक मुंह अंधेरे अपने खेत में बैठा हुआ तम्बाकू पी रहा था जब मानक का एक पुराना मित्र वहां से गुजरा।

"इस ओर से कहाँ जा रहा है भवानी ?"

भवानी एक मिनट को रुककर खड़ा हो गया। यद्यपि उसने अपने कन्धे पर एक छोटी-सी गठरी लटकाई हुई थी फिर भी आँखों में कहने लगा : "कहीं नहीं।"

"अभी तो सवेरा है। आ बैठ तम्बाकू पी ले।" मानक ने आवाज दी।

भवानी बैठ गया और मानक के हाथ से चिलम लेकर पीता हुआ कहने लगा—"मेले जा रहा हूँ, आज मेला है।"

मेले के शब्द ने मानक के दिल में जैसे कोई सुई चुभो दी, मानक को महसूस हुआ उसके भीतर कहीं पीड़ा हुई थी।

"आज मेला है ?" मानक के मुँह से निकला।

"हर वर्ष आज के दिन ही होता है।" भवानी ने कहा। फिर मानक की ओर ऐसे देखा जैसे वह यह भी कह रहा हो, 'तू भूल गया है इस मेले को ? चार वर्ष हुए जब तू मेले में गया था। मैं भी तो तेरे साथ था। तूने तो इसी मेले में मुहब्बत की थी।'

भवानी ने कहा कुछ नहीं, पर मानक को ऐसे महसूस हुआ कि जैसे उसने सब कुछ सुन लिया था। उसको भवानी पर गुस्सा आ रहा था कि वह सब कुछ क्यों सुन रहा है।

भवानी मानक की चिलम छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उसकी पीठ पर लटक रही गठरी में से उसकी बांसुरी का सिरा बाहर निकला हुआ था। भवानी चलता जा रहा था।

मानक उसकी पीठ को देखता रहा। पीठ पर रखी हुई छोटी-सी गठरी को देखता रहा। गठरी में से निकले हुए बांसुरी के सिरे को देखता रहा।

'भवानी और भवानी की बांसुरी मेले जा रहे हैं।' मानक को अपनी बांसुरी स्मरण हो आई जब उसने मायके जा रही गुलेरी को अपनी बांसुरी देते हुए कहा था—'इसे तू साथ ले जा।' फिर मानक को ख्याल आया, 'और मैं ?'

मानक का मन आया कि वह भी भवानी के पीछे-पीछे दौड़ पड़े। वह अपनी उस बांसुरी के पीछे दौड़ पड़े जो उससे पहले मेले में चली गई थी

मानक ने हाथ से चिलम फेंक दी और भवानी के पीछे-पीछे दौड़ पड़ा। फिर मानक की टाँगें काँपने लग पड़ीं। वह वहीं का वहीं बैठ गया। मानक को सारा दिन और सारी रात मेले जा रहे भवानी की पीठ दिखाई देती रही।

दूसरे दिन तीसरे पहर का समय था जब मानक अपने खेत में बैठा हुआ था। उसको मेले में से आते हुए भवानी का मुँह दिखाई दिया।

मानक ने मुँह एक ओर कर लिया। उसने सोचा कि मुझको न तो भवानी का मुँह दिखाई दे और न भवानी की पीठ। इस भवानी को देखकर उसको मेले की याद आ जाती थी और यह मेला उसके सोये हुए दिल के मांस को जगा देता था। और जब वह मांस जाग पड़ता था उसमें बहुत पीड़ा होती थी।

मानक ने मुँह फेर लिया, पर भवानी चक्कर काटकर भी मानक के सामने आ बैठा। भवानी का मुँह ऐसा था, जैसे किसी ने जल रहे कोयले पर अभी-अभी पानी डाला हो। और उसके साथ का रंग अब लाल न होकर काला हो।

मानक ने डरकर भवानी के मुँह की ओर देखा।

"गुनेरी मर गई।"

"गुनेरी मर गई?"

"उसने तुम्हारे विवाह की बात सुनी और मिट्टी का तेल अपने ऊपर डालकर जल मरी।"

"मिट्टी का तेल?"

इसके बाद मानक बोला नहीं। पहले भवानी डरा। फिर मानक के माँ-बाप डर गए, और फिर मानक की नई बहू डर गई कि मानक को क्या हो गया था। वह न किसी के साथ बोलता था, और न किसी को पहचानता दीखता था।

कई दिन बीत गए। मानक समय पर रोटी खाता, ढोरों का चारा भी डालता और सभी के मुँह की ओर ऐसे देखता जैसे वह किसी को भी न पहचानता हो।

"मैं उसकी औरत काहे की हूँ? मैं तो सिर्फ उसके बेटे की माँ हूँ।"

[illegible] भीगी आँखें [illegible] बालक की [illegible] पर [illegible] | [illegible] [illegible] पर बालक के मां [illegible] में न आती हों।

[illegible] बात बहुत बड़ी [illegible] में यह [illegible] । [illegible] की [illegible] तो बालक की [illegible] बालक के घर [illegible], कोमल रेशमी कपड़े [illegible] दिया।

[illegible], फिर जैसे बोल उठा, "[illegible], [illegible], मुझे [illegible] की बू आती है।"

मैं सब जानता हूं

"देखो न इस बेलदार को—पंछ की तरह झूलता चला आता है—" ठेकेदार जैमलसिंह ने तारासिंह मिस्त्री की ओर मुंह घुमाकर कहा और फिर अपनी आवाज़ को आधी गीठ ऊपर उठाकर बेलदार को कहने लगा, "ठीक से पकड़ तसले को और पांव उठा…तसले के सिर को कहीं पीड़ तो नहीं होती…" और फिर ठेकेदार जैमलसिंह अपनी आवाज़ को आधी गीठ और ऊपर उठाकर एक बेलदार को नहीं, सब बेलदारों को कहने लगा, "ढाई रुपये रोज़ के लिए मुंह उठाए बैठे हैं…पांव बजने नहीं देते…मैं सब जानता हूं…"

"वो कुली कहां मर गई। मैंने उन्हें ईंटें लाने के लिए कहा था…" तारासिंह मिस्त्री मुंडेर से नीचे झांकते हुए बोला और देखा कि दोनों मज़दूर औरतें सिर पर तसलों में से मसाले को फेंककर अभी मसाले के पास ही खड़ी हुई थीं।

"ओ छोकरी!" तारासिंह ने हड़काया।

दोनों मज़दूर औरतें हाथों में खाली तसलों को पकड़े जब सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आईं तो आते ही तारासिंह मिस्त्री के पैरों पर पड़ीं, "हमें छोकरी बुलाए है?…देख तो ज़रा अपनी शक्ल को…"

"क्या हो गया मेरी शक्ल को…तुझसे तो अच्छी है…कहीं तो शीशा लाकर देख ले…"

"देखा बड़ा बड़बड़ करता…हमको छोकरी कहें बुलावे है?"

"टोकरी थोड़े मारते तो नहीं होंगी।"

"इतनी-सी गलती को टोकरी भरते...तू हमारी टोकरी बुलाए है?"

मिस्त्री ने समझा था कि मजदूर औरतों को टोकरी शब्द का पता नहीं था, उन्होंने इसे गाली समझ लिया था, इसीलिए लड़ रही थीं, पर जब उसने सुना कि उन्हें टोकरी शब्द का पता था, और वे इसलिए नहीं लड़ रही थीं कि वह कोई गाली थी, बल्कि इसलिए चिढ़ी हुई थीं कि मिस्त्री ने उन्हें छोटी बच्चियां समझ रखा था, अनजान औरतें क्यों नहीं समझा था—इसलिए मिस्त्री हंसने लगा।

"फूलवती है मेरा नाम और इसका शांतवती..." एक ने दूसरी की ओर देखा और फिर दोनों हंसने लगीं।

"फूलवती सही, तुम कहो तो मैं फूला रानी बुला लिया करूं तुम्हें... मगर ईंटें तो ला दे..."

"क्यों लाऊं जी ईंटें? पहले मलवा उठाने को क्यों कहा था? सुबह से हम मलवा उठा रही हैं। अब तो मलवा ही उठाएंगी। ईंटें मंगवानी थीं तो सुबह ही ईंटों पर लगा देते..."

"मेरी मर्जी है मैं मलवा उठवाऊं—मेरी मर्जी है मैं ईंटें मंगवाऊं..."

"हाय-हाय मर्जी तो देख इसकी..."

"हां-हां देख मेरी मर्जी, मैं अभी ठेकेदार से कहता हूं..."

"देखो मिस्त्रीजी—सकायतों से काम नहीं होगा—मैं बताए देती हूं..."

"तू काम नहीं करेगी तो मैं शिकायत करूंगा..."

"काम से थोड़े ही भागती हूं...तुम बात ही ऐसी करते हो..."

"क्या बात की है मैंने?"

"काम लेना हो तो सुबह आते ही अपने-अपने बेलदार बांट लिया करो...आज तूने कलुया को कहा था ईंटें लाने के लिए...अब कलुया से मंगा लो..."

"कलुया रोड़ी बनाने के लिए गया है।"

"रोड़ी तो सिरमिट वाला बनाएगा—रोड़ी बनाना तो उसीका का

है…"

इतनी देर में ठेकेदार सीमेंट की बोरियां निकलवाकर फिर छत पर आ गया था। आते ही तारासिंह को दबाकर बोला, "तू इनमें कहां उलझ बैठा · निरी कांय-कांय…मैं सब जानता हू · "

"मेरे पास ईंटें कम थी—मैंने इन्हें कहा कि दो-एक फेरे लगा दो—इतने में कलुआ आ जाएगा—काम चालू रहे—इसलिए मैंने कहा था…"

"देखो ठेकेदार जी ! यह मिस्त्री हमको छोकरी बुलाता है…" फूलमती ने बीच में कहा।

"ये कंचिया कहां से पकड़ लाए तारासिंह। बागड़िनियों का कोई फ़ायदा नहीं। काम भी दुगुना करती है और ज़बान नहीं हिलाती…"

ठेकेदार ने मिस्त्री से ध्यान हटाकर दोनों कुली औरतों की तरफ़ रुककर देखा। और उसने अभी पिछले आठ दिनों से जो बात नहीं देखी थी, वह भी देखी कि उन दोनों में से जो फूलमती थी, उसके पेट में कोई छः महीनों का बच्चा था। वह शायद घड़ी-पल सांस लेने के लिए ही तगाई छोड़ बैठी थी।—और ठेकेदार की आंखें और कड़ुवी हो गईं। "मैं सब जानता हूं··" ठेकेदार ने कहा।

"क्या जानते हो ठेकेदार जी ?" फूलमती ने चमककर पूछा।

"चल-चल काम कर तू···काम तुमसे होता नहीं · बातें करनी हो।" ठेकेदार ने फिर फूलमती के पेट की ओर देखा।

"क्या देखते हो ठेकेदारजी ?" फूलमती ने सिर के पल्लू को मुंह की ओर खींचा और हंसने लगी।

"तुम्हारा मर्द कहां है ! कमाता कुछ नहीं मुर्दुआ ?" ठेकेदार ने कुछ रहम से और कुछ क्रोध से पूछा।

"मेरा मर्द ? वह तो मर गया। अब काम नहीं करूंगी तो खाऊंगी क्या ?"

"तुमसे यह काम नहीं होने का, न ईंट ढोने का, न मसाला उठाने का···"

"जानती हूं ठेकेदार जी। पर का करू···पेट के बदले करनी पड़े है, तभी का अब तो मौसम ·

[illegible] देता है [illegible] था। फिर भी [illegible]। पर सरदार जी तू बहुत बड़े हैं। फिर भी [illegible] आ जाए [illegible]।" फूलमती की आवाज सीढ़ियों में आ गई। [illegible] अपनी [illegible] में ममता छलकी रही थी, [illegible] सिर पर [illegible] और ममता के भरे हुए [illegible] में [illegible] तारासिंह मिस्त्री की ओर मुंह करके कहने लगी, "तुम गुस्सा न करो मिस्त्रीजी। मैं ईंटें लाए देती हूं—बस यह [illegible] ईंटें ले आऊंगी…"

"तुम ऐसे काम किया करना—बीच में [illegible] क्या करती है…"

"मैं [illegible] करती हूं?"

"और नहीं तो क्या? अब [illegible] तो मैं तुम्हारा नाम कांय-कांय रख दूंगा…"

"घर में औरत तो होगी मिस्त्रीजी?" सीढ़ियां उतरते हुए फूलमती ने पूछा।

"हां, है।" मिस्त्री तारासिंह ने सीमेंट के बोरे को कील ठोंकते हुए जवाब दिया।

"तो उसका नाम कांय-कांय रख दो न।" सीढ़ियां उतरती हुए फूलमती ने कहा और फिर हंसने लगी।

"तुमने भाई उसे क्यों मुंह लगा लिया?" ठेकेदार ने पास से कहा।

"मुंह तो मैंने नहीं लगाया ठेकेदार जी…ऐसे ही मुंह का स्वाद खराब करना था?" मिस्त्री हंसने लगा।

"मैं सब जानता हूं। अभी तू ध्यान लगाकर काम कर। आज मैंने बड़ी शिलफ डलवानी है।" ठेकेदार ने अभी इतना ही कहा था कि उसे याद आया, पिछले कई महीनों से तारासिंह की औरत बीमार थी। इसलिए हमदर्दी से पूछने लगा :

"क्यों भाई तारे! तुम्हारी औरत बीमार थी…अब तो ठीक है न?"

"ठीक तो नहीं सरदार जी। सुस्त पड़ी रहती है…जाने क्या बीमारी है उसे?"

"कहीं मायके जाने की तो बीमारी नहीं भाई! मैं जानता हूं, इन

तो की···"

"मैंने कोई बांधकर थोड़ी नहीं रखी हुई···"

"फिर एक-दो लगा देनी थी।"

"नहीं, सरदार जी! मुझसे मारा नहीं जाता औरत को।"

"न भाई, मारना भी नहीं चाहिए··· यूं ही कहीं रस्सी तुड़ा ले—हमीं मगर औरत को मारे तो बांधकर मारे · नहीं तो उसे कभी न रे ·"

"बांधकर कैसे ठेकेदार जी?"

"तू समझा कर बात को भाई · "

"मैं तो कुछ नहीं समझा · "

ठेकेदार की हंसी उसकी घनी मूछों में फंस गई और वह कहने लगा, घर में कोई बच्चा-मुन्ना हो तो भले ही औरत को पीट डालो, वह नहीं जाती कहीं। मैं सब जानता हूं···"

"आपके तो अब बच्चा हो गया है ठेकेदार जी। कभी यह नुस्खा इस्तेमाल किया है?" मिस्त्री की हंसी उसकी पतली मूछों से छनने लगी।

ठेकेदार ने अभी जवाब नहीं दिया था कि फूलमती मसाले वाला खाली तसला हाथ में पकड़े छत के ऊपर आ गई। नीचे ईंटों का ट्रक आया था। ठेकेदार पर्चों पर दस्तखत करने के लिए नीचे चला गया।

"ओ काय-काय, तू ईंटें नहीं लाई?" मिस्त्री ने फूलमती से रोष से पूछा।

"जो कांय-कांय होगी वह ईंटें लाएगी। मैं तो फूलमती हूं।" फूलमती ने एक नखरे से कहा और खाली तसले में मलबा भरने लगी।

"अब मैं तेरे से बात ही नहीं करूंगा··· वह आ गया कलुआ···जा रे कलुआ। जल्दी से ईंटें ले आ, देखना सूखी ईंटें मत लाना···तराई कर लेना।"

"अब मैं तेरे से बात नहीं करूंगा ··" फूलमती ने मुंह चिढ़ाया और कहने लगी, "तो कौन बात करता है तेरे से मिस्त्री जी!"

"मलबा तो आज ही उठ जाएगा—तू फिर कल क्या करेगी?···कल मत आना काम पर···"

नया ऐंगल बना है···और ऐसे ही गिरवाएगा।"

"फिर ?"

"फिर भी वह औरत समझती पहुंची···वह मजदूरों के मामले बड़े तेज होते हैं···"

"फिर क्या बना ठेकेदार जी ?"

"उसका तो जाने क्या बनेगा···पर मैं तो मारा गया भाई। न वह औरत मेरा बिल उतारती है और न वह कमबख्त···"

"बिल तो ठेकेदार जी अब ऐंगल को उतारना चाहिए।"

"मैं सब जानता हूं—उन ऐंगलों को···यह मर्दुए बिल उतारेंगे··· कमबख्त को चाहिए था कि औरत को पहले ही दबाकर रखता।"

मिस्त्री ने हाथ का काम खत्म कर लिया था, इसलिए ठेकेदार ने मुंडेर से झांककर बेलदारों को आवाज दी कि वे रोड़ी के तसले भर के ले आएं···।

"पांच तो बज गए ठेकेदार जी। अब शैल्फ कैसे पड़ेगा ?" फूलमती ने छत पर आते हुए कहा।

"तुमने घड़ी बांधी हुई है हाथ पर ? पांच कहां बज गए अभी ?"

"मैं तो ठेकेदार जी बिगर घड़ी के बता दूं, तुम देख लो घड़ी में।"

"तू तो सवेरे भी मटककर आती है। तुमसे मैं छः बजे तक काम करवाऊंगा। मैं सब जानता हूं।"

शैल्फ पड़ गया। छः बजने वाले हो गए। ठेकेदार ने मिस्त्रियों को और बेलदारों को ताकीद की कि वे सवेरे आठ बजे से दस मिनट पहले ही पहुंच जाएं, दस मिनट ऊपर न होने दें, "कल छजलियां डाल देनी हैं और परसों सारी दीवारों को छतों तक पहुंचा देना है।"

सवेरे, आठ बज गए, नौ बज गए, दस बज गए। काम चालू हो गया था पर सारे मिस्त्री और बेलदार हैरान थे कि ठेकेदार अभी तक नहीं आया था।

कल चाहे फूलमती ने कहा था कि वह तारासिंह मिस्त्री को ईंटें नहीं पकड़ाएगी, पर आज जब सब बेलदारों ने अपने-अपने मिस्त्री चुने तो फूलमती ने तारासिंह को अपना मिस्त्री चुन लिया।

"आज तो मिस्त्री जी, मुझे डर लागे···" फूलमती ने सिर पर उठाई ईंटों को नीचे मिट्टी के एक ढेर पर फेंकते हुए कहा।

"काहे का डर लागे फूलमती ?"

"आज ठेकेदार को जाने कोई मुसीबत पड़ गई।"

"किसी काम को गया होगा···अभी आता होगा···"

"आज तो मेरा दिल कहता है कि कोई बुरी बात होगी।"

काम चालू था। एक ठेकेदार नहीं आया था। पूरी चहल-पहल बनी हुई थी। आज फूलमती भी मिस्त्री से नहीं लड़ रही थी।

खाने के समय तक सबको ठेकेदार के आने की उम्मीद थी। पर उसके बाद तारासिंह मिस्त्री के मुंह से भी रह-रहकर निकलने लगा, "आज न जाने ठेकेदार का क्या बना···वह रहनेवाला तो नहीं था।"

शाम तक छतलियां पड़ गईं, कल दीवारें ऊंची हो जानी थीं। छत डालने के समय ठेकेदार का पास होना जरूरी था। इसलिए तारासिंह मिस्त्री ने सबको कहा कि वह शाम को ठेकेदार के घर जाएगा और पता करेगा कि क्या बात हुई।

अगले दिन सवेरे जब सब मिस्त्री और बेलदार काम पर पहुंचे तो ठेकेदार अब भी वहां दिखाई नहीं देता था। सब तारासिंह मिस्त्री के मुंह की ओर देखने लगे।

"ठेकेदार आएगा अभी। थोड़ी देर के बाद आएगा···हम काम चालू करेंगे···वह कुछ बीमार है···" तारासिंह मिस्त्री ने सबको यह बात कही पर उसके मुंह से लगता था कि बात कुछ और थी।

फूलमती कुछ देर तारासिंह मिस्त्री को चुपचाप ईंटें पकड़ाती रही, फिर धीरे से पूछने लगी, "क्या बात हो गई मिस्त्री जी ?"

"बात···बात तो कुछ नहीं।" मिस्त्री ने बात टाल दी।

दोपहर के समय जब रोटी खाने की छुट्टी हुई तो नीम के पेड़ के नीचे बैठकर रोटी खा रहे तारासिंह मिस्त्री से फूलमती फिर पूछने लगी, "हमको नहीं बताओगे मिस्त्री जी ?"

"कहा तो दिया, ठेकेदार बीमार है।"

"झूठ बोलते हो मिस्त्री जी।"

"मैं झूठ बोलता हूं तो तू ठेकेदार के घर चली जा, उससे पूछ ले…"

"तुम्हारी मर्जी, मिस्त्री जी! हमने क्या करना है पूछकर… यह तो ऐसे ही… किसी के दुख में दुख लागे…"

मिस्त्री कुछ देर फूलमती के मुंह की ओर देखता रहा। फिर बोला, "बात बड़ी गजब है, फूलमती, किसीसे बताना नहीं…"

फूलमती बोली कुछ नहीं, उसने केवल हुंकार में सिर हिला दिया।

"ठेकेदार की औरत…" मिस्त्री कुछ कहते-कहते फिर रुक गया।

"भाग गई?"

"यह तो मुझे पता नहीं कहां गई। घर में नहीं है। शायद ठेकेदार से रूठकर अपने मां-बाप के यहां चली गई होगी…"

"उसका बच्चा नहीं है?"

"बच्चा तो है।"

"वह बच्चे को साथ ले गई?"

"नहीं, बच्चे को छोड़कर गई है।"

"फिर मां-बाप के यहां नहीं गई होगी।"

तारासिंह मिस्त्री अब तक सचमुच यह सोच रहा था कि वह शायद ठेकेदार से रूठकर अपने मां-बाप के पास चली गई होगी। पर फूलमती की दलील उसे ठीक लगी कि अगर वह अपने मां-बाप के पास गई होती तो बच्चे को अपने साथ ले जाती।

"ठेकेदार ने झगड़ा किया था?"

"झगड़ा तो हुआ ही होगा। शायद ठेकेदार ने उसे मारा होगा…"

"ठेकेदार शराब पीता है?"

"शराब तो नहीं पीता। पर वह सोचता है कि कभी-कभी औरत को मारना जरूर चाहिए।"

"बेकसूर को मारना चाहिए?"

"वह सोचता है कि इस तरह औरत बिगड़ती नहीं…दो दिन हुए मुझसे कह रहा था कि औरत को मारना हो तो बांधकर मारना चाहिए…"

"रस्सी से बांधकर?"

"नहीं-नहीं···उसका मतलब था कि जब घर में कोई बच्चा हो जाए तो औरत घर से बंध जाती है। फिर उसको मारपीट भी करो तो वह घर को छोड़कर भागती नहीं···।"

"एक बात कहूं मिस्त्री जी?"

"कहो···"

"ठेकेदार तो कहता है कि सब बात जानता हूं···वह खाक जानता है···"

तारासिंह मिस्त्री ने देखा, सामने ठेकेदार आ रहा था। वह आगे आकर ठेकेदार को मिला और दूर सड़क पर खड़ा होकर उससे पूछने लगा, "कुछ पता चला?"

ठेकेदार ने जवाब देने की जगह इन्कार में सिर हिला दिया।

"मायके तो वह नहीं गई। मेरा दिल यही कहता है···वैसे आपने आदमी भेजा ही होगा, आज आकर खबर दे देगा।"

"आदमी लौट आया है। वह वहां नहीं गई।" ठेकेदार की आवाज उसके गले में कई गांठें नीचे उतरी हुई थी। "आसपास के कुएं भी खोजवा लिए हैं···"

"आप क्या सोचते हैं कि उसने कहीं कुएं में···"

"कहा करती थी···मैं किसी दिन कुएं में छलांग मारकर मर जाऊंगी···मई मुझे क्या मालूम था···"

ठेकेदार जैलसिंह की जिन्दगी में यह शायद पहला दिन था जब उसने यह नहीं कहा था, "मैं सब जानता हूं···"

एक लड़की : एक जाम

प्रसिद्ध चित्रकार सुमेश नन्दा की यह कहानी असल में मैंने पिछले बरस लिखी थी। दिल्ली में उनके चित्रों की प्रदर्शनी लगी थी। हफ्ते भर, रोज़, किसी न किसी पत्र में सुमेश नन्दा की कला की आलोचना होती रही। बड़े समझदार लोग यह प्रशंसात्मक आलोचना करते थे। मुझे चित्रकला के सम्बन्ध में सिर्फ उतनी ही जानकारी है, जितनी एक कला-विधान से अनजान, पर एक सूक्ष्म अहसास वाले आदमी को होती है।··· और प्रदर्शनी के कई चित्रों की खामोश तारीफ करती मेरी आंखें सुमेश नन्दा के दो चित्रों के सामने जमकर रह गई थीं। एक चित्र के नीचे लिखा हुआ था, 'ढाई पत्ती-डेढ़ पत्ती' और दूसरे चित्र के नीचे लिखा हुआ था, 'एक लड़की : एक जाम।'

पहला चित्र चाय के बाग में चाय की पत्तियां चुनती हुई पहाड़ी लड़कियों का था और इस चित्र का भाव चित्रकार ने ऐसे समझाया था :

चाय के सारे पौधे की अन्तिम कोंपल डेढ़ पत्ती होती है, एक पूरी बड़ी पत्ती और एक उसके साथ जुड़ी हुई छोटी-सी बच्चा पत्ती। उस डेढ़ पत्ती की चमक ही अलग होती है। उसअन्तिम कोंपल से नीचे ढाई पत्तियां उगती हैं, बड़ी नर्म। और फिर उससे नीचे मोटी पत्तियों की कई शाखें। ढाई पत्ती और डेढ़ पत्ती अलग तोड़कर रख लेते हैं। इन पत्तियों से जो चाय बनती है, वह बड़ी महंगी बिकती है। बाकी हम लोग जो चाय खरीदते हैं, वह नीचे की सस्ती, मोटी पत्तियों की चाय होती है। एक साबुत

पौधे से सिर्फ चार छोटी पत्तियां झरती हैं, सारे बाग में से आखिर कितनी पत्तियां झरेंगी ? यह चाय बड़ी महंगी बिकती है, साठ रुपये पौंड से भी महंगी।

सुमेश नन्दा के इस चित्र में जो सबसे पहली लड़की थी, उसका मुंह आधे से भी थोड़ा दिखाई पड़ता था। हमारे सामने ज्यादा उसकी पीठ थी, फिर भी उसके सौन्दर्य की कैसी छवि दिखती थी ! लगता था, सारी पहाड़ी लड़कियां जैसे चाय का एक पौधा हों, छितरा-फैला एक पौधा, और यह लड़की, इस पार खड़ी हुई लड़की, सारे पौधे की अन्तिम कोंपल हो, डेढ़ पत्ती की छोटी, हरी चमकदार कोंपल !···पर मैंने अपनी बात अपने पास ही रखी और चित्रकार को कुछ नहीं कहा।

दूसरा चित्र, जिसके नीचे लिखा था, 'एक लड़की : एक जाम', एक पहाड़ी लड़की का अनोखा सौन्दर्य था; जैसे लोग कहते हैं, 'यह चित्र तो मुंह से बोलता है !' वाकई ऐसा मुंह से बोलनेवाला चित्र मैंने कभी नहीं देखा था। उसके सम्बन्ध में चित्रकार ने कुछ नहीं कहा था। मैंने ही कहा, "ऐसा जाम पीने के लिए तो एक उम्र भी थोड़ी है !"

चित्रकार ने चौंककर मेरी ओर देखा। कोई साठ साल की उम्र होगी उनकी। जाने कौन-सी जवानी पिघलकर चित्रकार की आंखों में आ गई। बोले, "इस चित्र की यह व्याख्या मैंने और किसी से नहीं सुनी। यह बिलकुल वही बात है, जो मैंने कहनी चाही थी। और तो और, मेरे मित्रों ने भी इसका यह अर्थ नहीं लगाया था। मेरे साथ कइयों ने मजाक किए, 'एक लड़की : एक जाम'···और जाम नित नया होता है !"

जाने उस चित्र में कौन-सा बुलावा था ! हफ्ते-भर वह प्रदर्शनी लगी रही, और मैं उस हफ्ते में तीन बार प्रदर्शनी देखने गई थी—असल में सारे चित्र नहीं, एक चित्र, 'एक लड़की : एक जाम !' किसी कला-मर्मज्ञ होने के जोर से नहीं, सिर्फ मन में कुछ उठते हुए के जोर से मैंने सुमेश नन्दा की उस कृति के सम्बन्ध में एक सादी-सी बात कही थी। और उस सादी-सी बात ने चित्रकार का सारा मन खोलकर उसके होंठों पर ला दिया था।

"कांगड़ा-कलम को जांचना-परखना मैं कुछ दिन कांगड़े के एक गांव

के रहा था। पारसाल चाय के बाग अधिक दूणी पर नहीं थे। यह चित्र, 'वाई पत्ती-टेढ़ पत्ती', मैंने यहीं बनाया था। यह लड़की, जो इस ओर खड़ी हुई है, ध्यान से देखना, यही लड़की है, जिसे दूसरे चित्र में मैंने लिया है, 'एक लड़की : एक जाम' !"

"इस को मैंने आपके बाग में पहले यहीं बनाया था। पर पहले दिन ही यह चित्र देखकर मुझे लगा था, जैसे सारी लड़कियां चाय का एक पौधा हों और यह लड़की इस पौधे की सबसे ऊपर की कोंपल हो, छोटी, हरी और मनमोहक !"

सुरेश चन्द्र की बूढ़ी आंखों में फिर एक जवान चमक आई और उन्होंने कहा, "अब तो मैं और विश्वास में भर गया हूं। तुमने यह बात अपने अधिकार से मुझसे निकलवा ली है। तुमने मेरे दोनों चित्रों के जैसे अर्थ लिए हैं, मेरी कहानी सुनने का तुम्हारा अधिकार हो जाता है। पहले किसीने मुझसे यह बात नहीं सुनी।

"मैंने उस लड़की को दूणी कहकर बुलाया था। उसका नाम पूछने का भी कष्ट मैंने नहीं किया था। उसीने, उस चाय की पत्तियां चुन रही से, 'वाई पत्ती-टेढ़ पत्ती' वाली बात मुझे सुनाई थी और मैंने उसे कहा, 'तू लड़कियों के सारे पौधे की ऊपर की पत्ती है, बड़ी महंगी !···जाने यह चाय कौन पिएगा !'

"बरसात के दिन थे। एक नाला ऐसे बहा कि साथवाले गांवों को जोड़नेवाली सड़क उसमें डूब गई। गांवों का आवागमन बन्द हो गया। कोई तीन दिन के बाद सड़क का जिस्म दिखाई दिया। इस तरफ से मैं जा रहा था, उस पार से वह दूणी आ रही थी। मैंने कहा, 'आखिर पानी रुक ही गया। एक बार तो ऐसे लगा था, इस पानी का बहाव सूखेगा ही नहीं !'

"पता है कि दूणी ने क्या कहा ? कहने लगी, 'बाबू, यह भी कोई आदमी के आंसू हैं जो कभी न सूखें !' मैं दूणी के मुंह की ओर देखता रह गया। उसका मुंह सुन्दर था, पर ऐसी बात भी कह सकता था, मैं यह नहीं सोच सकता था। कुछ ऐसी बात मैंने पहले एक बंगाली उपन्यास में पढ़ी थी, पर दूणी ने तो कभी बंगाली उपन्यास नहीं पढ़ा था। जाने, सारे

देशों के दुखों की एक ही भाषा होती है !

"मैं उसके घर पर गया। उसका बाप था, मां थी, दो भाई थे और एक भाभी। मैं उसके घर का भीतर-बाहर टटोलता रहा। वह कौन-सा दुःख था उसके मन में, जहां से उसकी यह बात उगी थी ? और मैंने उसके दुःख का बीज ढूंढ लिया। उसके बापू के सर पर काफी कर्जा था। उस ओर लड़कियों की कीमत पड़ती है—तीन-चार सौ से लेकर हज़ार तक। और कर्जा देनेवाले ने टूणी को पन्द्रह सौ रुपये के बदले उसके बापू से मांग लिया था। और टूणी कहती थी, 'वह आदमी आदमी नहीं, एक देव-दानव है ! मुझे सपने में भी उससे भय आता है !'

"एक दिन मैंने टूणी को अलग बिठलाकर पूछा, 'अगर मैं तेरे भय की रस्सी खोल दूं ?'

"'वह कैसे, बाबू ?'

"'मैं पन्द्रह सौ रुपये भर देता हूं। तू अपने बापू से कह, वह सगाई तोड़ दे।'

"कोई और लड़की होती, जाने मेरे पैरों को हाथ लगाती। पर उस टूणी ने सीधा मेरे दिल में हाथ डाल दिया। कहने लगी, 'और बाबू, तू मेरे साथ ब्याह करेगा ?'

"कभी मैंने कहा था, 'टूणी ! तू चाय के पौधे की सबसे कीमती पत्ती है, यह चाय कौन पिएगा ?' और आज टूणी ने अपने प्राणों की पत्ती से मेरे लिए यह चाय बना दी थी। पर न मैंने यह बात पहले सोची थी, न मैंने कही थी। मैंने उसे समझाना चाहा कि मेरा यह मतलब नहीं था। पर उसके कपड़ों पर तो जैसे किसी ने चिनगारी फेंक दी हो।

"कहने लगी, 'अरे बाबू, मैं कोई भीख मांगनेवाली हूं ?'

"मेरी ज़िन्दगी कोई अच्छी नहीं थी। कितनी लड़कियां आई थीं और फिर अपनी राह चल दी थी। मैं ज़िन्दगी की एक छोटी-मोटी सड़क पर ही उनके साथ चल सका था; कोई लम्बा रास्ता मैंने कभी नहीं पकड़ा। और अब मेरा यह विश्वास ही खो गया था कि मैं कभी भी किसी के साथ ज़िन्दगी का सारा सफर चल सकूंगा।

"'मेरी ज़िन्दगी में बड़ी तपन है। तू पी नहीं सकेगी, यह मुंह जल

जाएगा !' और मैंने हाथ से टूणी का हाथ छुड़ाने के लिए, उसके होंठों को अपनी अंगुली लगा दी।

"'एक-एक जाम की खुशी, बाबू,' ज़रा ऊंची आवाज़ मैंने सुनी, और वह जैसा टूणी था वह मैंने देखा। मुझे लगा, यही टूणी है, यही टूणी, जिसके हाथ से ज़िन्दगी का जाम शायद भर सकता हूं।

"अपने और उसके फैसले को मैंने चांदी के रुपये की भांति फिर टनकाकर देखा। मैंने कहा, 'मुझे पता नहीं, कितनी लड़कियां मेरी ज़िन्दगी में आ चुकी हैं। हर लड़की को मैंने शराब के एक जाम की तरह पिया, और फिर एक जाम के बाद मैंने दूसरा जाम भर लिया।'

"टूणी हंस दी। कहने लगी, 'क्यों बाबू, तेरी प्यास नहीं मिटती ?'

"मैंने अभी कुछ नहीं कहा था कि टूणी फिर बोली, 'अच्छा, एक वादा कर ले बाबू ! जब तक मेरे दिल का प्याला खत्म न हो जाए, तू उतनी देर किसी दूसरे प्याले को मुंह न लगाएगा।'

"मुझे लगा, मैंने आज तक जितने भी जाम पिये थे, वे जिस्मों के जाम थे, बिल्कुल जिस्मों के जाम ! उनमें दिल का जाम कोई नहीं था। अगर होता तो शायद जब तक उस प्याले की शराब खत्म न हो जाती, मैं दूसरे प्याले को मुंह न लगा सकता।···और शायद दिल के प्याले में से शराब कभी खत्म नहीं होती।

"मैंने अपने फैसले का रुपया टनकाकर देख लिया। टूणी का फैसला तो था ही खरा···टूणी के मां-बाप ने हम दोनों का फैसला मान लिया। और मैं रुपयों का प्रबन्ध करने के लिए शहर में आ गया।"

सुमेश नन्दा ने जब अपनी यह कहानी आरम्भ की थी, उस समय आठ बजने वाले थे। आठ बजे प्रदर्शनी खत्म हो जाती थी, इसलिए कमरे में से चित्र देखने वाले लोग लौट गए थे, और नया कोई आने वाला नहीं था। कहानी भंग नहीं हुई थी। पर कहानी को यहां तक पहुंचाकर चित्रकार ने स्वयं ही अपनी खामोशी से उस कहानी को खड़ा कर लिया।

मैं चित्रकार को देखती रही; खड़ी हुई कहानी को देखती रही। चित्रकार जैसे एक समाधि में डूब गया था।

चपरासी प्रदर्शनी के कमरे का दरवाज़ा बन्द करने के लिए बाहर

दहलीज़ों के पास आ गया था। मैंने हाथ के इशारे से उसे खामोश रहने के लिए कहा और इन्तज़ार करने लगी, शायद यह खड़ी हुई कहानी कोई कदम उठा ले।

चित्रकार की वह आंखों से आंसू टपकने लगे शायद। उस पानी ने कहानी को बहाव में डाल दिया।

"मैं जब रुपये लेकर वापस गया, किस्मत ने मेरा जाम मेरे हाथों से छीन लिया था।"

"क्या बाप ने टूणी का ज़बरदस्ती ब्याह कर दिया था?" मैंने कांपकर पूछा।

"इससे भी भयंकर बात!... टूणी जिसे देव-दानव कहती थी, उस बूढ़े साहूकार ने अपना सौदा टूटने की खबर सुन ली थी और उसने धोखे से किसीके हाथों टूणी को ज़हर पिला दिया था..."

"टूणी की चिता में थोड़ी-सी सेक बाकी थी, थोड़ी-सी आग। मैंने उस आग को साक्षी बनाया और चिता के गिर्द घूमकर जैसे फेरे ले लिए।"

शायद तीस-पैंतीस बरस की उम्र में चित्रकार ने वे फेरे लिए होंगे। अगले तीस बरस उसने कैसे उन फेरों की लाज रखी होगी, यह उसके साठवें-बासठवें बरस से भी पता चलता था, कोई पूछने की बात नहीं थी। मुझे लगा, सारी बीसवीं सदी उसे प्रणाम कर रही है।

धीरे-धीरे चित्रकार के होंठ फड़के, "टूणी ने कहा था, 'एक वादा कर ले, बाबू! जब तक मेरे दिल का प्याला खत्म न हो जाए, तू उतनी देर किसी दूसरे प्याले को मुंह न लगाएगा।'...वह सामने खड़ी हुई टूणी गवाह है, मैंने किसी दूसरे प्याले को मुंह नहीं लगाया।"

सामने टूणी का चित्र था। टूणी एक लड़की, एक जाम!...मौत ने चित्रकार के हाथों से वह जाम छीन लिया, पर कोई मौत उसकी कल्पना में से वह जाम न छीन सकी...और चित्रकार की सारी उम्र पीते हुए बीत गई; उस जाम की शराब खत्म न हुई!

लगभग एक बरस हो चला है, मैंने सुमेश नन्दा के मुंह से यह कहानी अपने कानों से सुनी थी, और फिर अगले दिन अपने हाथों से लिखी थी,

[illegible] थी। [illegible] मैंने कहानी में [illegible] लिखा था, 'उस तरह मेरी [illegible] मगर कोई दावा नहीं बनता। उन जाने [illegible] गये थे, फिर उन [illegible] उनका असल नाम भी बदलकर [illegible]'

और अब [illegible], अखबारों में [illegible], प्रसिद्ध चित्रकार [illegible] के सम्बन्ध में पत्रों के [illegible] लिखा हुआ था, 'जिस [illegible] चित्रकार [illegible] उनकी बनाई हुई एक ही [illegible] हुई थी, [illegible]'।

[illegible] था—आज चित्रकार का दावा खत्म हो गया है। इस कहानी में आज मैंने कुछ नहीं बदला, सिर्फ उनका असली नाम लिख दिया है, उन्हीं के कहने के अनुसार!

एक गीत का सृजन

रवि ने अभी-अभी एक नज़्म लिखनी शुरू की थी। लक्कड़ मंडी से वाले टोप को जाती हुई पगडंडी चढ़ते हुए उसने पहाड़ की हरियाली को घूट-घूट पिया था, अंजुलि भर कर पिया था, होंठ टेक कर पिया था, और फिर कई मीलों की चढ़ाई के बाद डाक बंगले में पहुंचकर उसने सब सामान रखा था, और अब उसकी बीवी ने उसके लिए गर्म कॉफी का प्याला बनाया था और उसके लिए पलंग पर बिस्तर बिछा दिया था, तो उसे महसूस हुआ था कि मैं अभी सो नहीं सकूंगा। वह डाक बंगले से अकेला बाहर निकल आया था। डाक बंगले से बाहर आकर उसे लगा कि जिस हरियाली को उसने घूट-घूट पिया था, अंजुलि भर कर पिया था, और होंठ टेक कर पिया था, उसे जज़्ब कर पाना मुश्किल था। उसने कागज़ लेकर एक नज़्म लिखनी शुरू कर दी थी। नज़्म लिखते-लिखते उसे महसूस हुआ था कि वह नज़्म लिखकर हरियाली के तेज़ नशे को उतारने के लिए एक 'ऐंटी-डोज़' ले रहा था।

कागज़ पर लिखी अधूरी नज़्म को उसने सीधे घास पर रख दिया था। नज़्म अभी पूरी नहीं लिखी हुई थी। पत्थर का छोटा-सा कंकर उसने कागज़ पर रख दिया और घास पर लेट गया। उसे साहिर की कही हुई एक बात याद हो आई, "मैं जब लिखता हूं तो निराशा के आलम में एक खूबसूरती पकड़ने की कोशिश करता हूं।" रवि को लगा कि जब मैं नज़्म लिखता हूं तो निराशा के आलम में खूबसूरती नहीं पकड़ता, बल्कि

[illegible] के [illegible] में [illegible] की कोशिश करता हूं।

रवि ने अपने मन की गहराइयों में झांककर देखा। वहां शायरी नहीं थी। पर [illegible] लिखी हुई नज़्म में शायरी थी. रवि इस बात से इनकार नहीं कर सकता था। उसे लगा जैसे वह अपने ही खयालों में बैठा हो। उसकी मुहब्बत अब भी उस [illegible] थी। मुहब्बत का दर्द भी दिल में नहीं रहा था। वह उस लड़की को नहीं पा सका था, जिसे उसने कभी चाहा था। पर उसकी ज़िन्दगी पर वह लड़की भी खुश-गुमानी में पूरी उतरती थी, जिसके साथ उसका विवाह हुआ था। शायद इसीलिए उसके मन में 'खोए हुए दिनों' का दर्द नहीं रहा था। पर लिखते हुए उसकी कविता में हर बार दर्द उतर आता था। पर इस दर्द को दर्द नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह दर्द अब जीवित नहीं था। इसीलिए आज रवि सोच रहा था कि उसके अन्दर वह रवि जो नज़में लिखता था —कब्र की शान्ति में बैठा हुआ था।

रवि को फिर सार्त्र याद हो आया। सार्त्र ने अपने बारे में लिखा था कि हाथ में कागज लेकर हर सुबह कुछ लिखने की उसकी दीवानगी इस तरह थी जैसे वह अपने जीवित होने की माफी मांग रहा हो। रवि को यह बात सच्ची मालूम हुई। उसने आज तक जो कुछ भी लिखा था, उसे उसने कभी उस लड़की को पढ़ाना नहीं चाहा था, जिस लड़की का जिक्र वह अपनी नज़्मों में करता था। न ही उसने अपनी कविताओं से नाम खरीदना चाहा था। प्रसिद्धि के विषय में भी उसका विश्वास सार्त्र से मेल खाता था कि प्रसिद्धि तब आती है जब मनुष्य मर चुका होता है। वह उसकी कब्र को सजाने के लिए आती है। और अगर कहीं वह पहले चली आए, मनुष्य के जीते जी चली आए, तो पहले वह अपने हाथों से मनुष्य को कतल करती है, फिर उसकी कब्र को सजाती है। रवि ने अपनी कविताओं को कभी इनामी प्रतियोगिताओं में नहीं भेजा था। ये प्रतियोगिताएं उसे ऐसे लगती थीं जैसे कुछ अमीर अपने धन या पदवी के ज़ोर से कलाकारों को बटेरों की तरह लड़ाकर देखते हों, और अपने प्रतियोगियों को घायल कर जो जीत जाता है, उसका जुलूस निकालते हों।

और रवि को महसूस हुआ कि वह न किसी महबूब के लिए लिखता है, और न मशहूरी के लिए। 'वह रोटी खाता था ताकि जीवित रह सके, और कविता लिखता था ताकि जीवित रहने के कसूर की माफी मांग सके।

और फिर रवि को अत्यन्त घृणित विचार ने आ घेरा कि नज़्में केंचुआ होती हैं। केंचुए पृथ्वी की जलन में से जनम लेते हैं और नज़्में मन की तपश में से। रवि को वास्तव में अपना विचार घृणित नहीं लगा था। उसे केंचुए की पिलपिली और लिजलिजी शक्ल याद हो आई थी और नज़्म की तुलना केंचुए से करते हुए उसे लगा था कि उसके इस ख्याल का बदन भी लिजलिजा गया था। 'पर बात सच्ची है'' रवि ने सोचा और हंस पड़ा।

फिर रवि को ख्याल आया कि हर नज़्म खामोशी की औलाद होती है। जब आदमी एक तरफ से इतना गूंगा हो जाता है कि एक शब्द भी नहीं बोल पाता, तो उसे अपनी खामोशी से घबराकर कविता लिखनी पड़ती है।

···और फिर रवि को ख्याल आया कि नज़्म लिखना खुदा के बाग के सेब चुराने के बराबर है। आदम ने सेब चुराया तो उसे हमेशा के लिए बाग से निकाल दिया गया था। इस तरह जो भी इन्सान नज़्म लिखता है उसके मन का कुछ हिस्सा भले ही इस दुनिया में रहता है पर कुछ हिस्सा हमेशा-हमेशा के लिए जलावतन हो जाता है।

'पर नहीं' रवि ने सोचा, 'इन दोनों पहलुओं का एक-दूसरे से नफरत का रिश्ता होता है। दोनों शायद एक-दूसरे से स्पर्धा करते हैं, इसलिए दोनों एक-दूसरे से घृणा करते हैं। यह नियमित घृणा आक्रमणात्मक स्थिति में बदल जाती है। कविताएं इस युद्ध में हथियार बनती हैं' और फिर यह बात सोचकर रवि को अपनी हंसी में दर्द महसूस होने लगा, 'और नज़्में ही शायद इस युद्ध में खाए हुए जख्मों की खरोंचें होती हैं।'

···नज़्मों के इतने रूप अख्तियार कर सकने की ताकत से रवि को नज़्मों के दीर्घ आयाम का विचार आया, 'इन्सान इस धरती पर कितनी कम जगह रोक पाता है। इन्सान के चारों ओर माहौल का जिग्ज़ैग इतना कसा हुआ और पेचीदा होता है कि वह आज़ादी से अपने हाथ-पैर

भी नहीं बर्दाश्त कर सकती। पर 'उसकी' कविता का आसमान इतना विस्तृत होता है कि वह एक ही समय अपना एक पांव इन्सान के पालने में रखकर, दूसरा पांव इन्सान की कब्र में रख सकती है।'

खामोश थी नदी जल्दी जा रही थी। नदी में बरसात के पानी की बाढ़ नहीं थी। वह दोनों किनारों की मर्यादा को स्वीकार किए चुपचाप बह रही थी और रवि उसके किनारे में निर्जीव बैठा सा रहा था।

'प्रोफेसर! आपका कागज हवा में उड़कर बहुत दूर चला गया था। आपको पता भी नहीं चला।'' सोना रवि के पास आकर बोली। उसने कागज रवि के हाथ के पास रख दिया। हवा तेज चलने लगी थी। सोना ने कागज पर रखने के लिए आसपास पत्थर का टुकड़ा खोजना चाहा। क्योंकि कागज पर रखा पत्थर का टुकड़ा छोटा था और कागज उसको उड़ा ले जाता था। सोना ने कागज पर अपना हाथ रख दिया।

रवि ने झुटपुटे की हल्की रोशनी में कागज की तरफ देखा, और फिर कागज पर टिके हुए सोना के हाथ की तरफ देखा। पतला और गोरा हाथ। रवि को लगा कि यह हाथ एक पेपर-वेट था। हाथ को जिस्म से अलग कर एक पेपर-वेट की तरह मेज पर रख सकने का ख्याल रवि को बहुत दिलचस्प लगा। उसे याद आया कि एक दिन उसकी बीवी ने उसके कोट को अपने कंधों पर डाला हुआ था तो उसे एक खूबसूरत हैंगर का ख्याल हो आया था। रवि को आश्चर्य था कि सजीव शारीरिक अंगों की कल्पना वह हमेशा निर्जीव वस्तुओं के रूप में क्यों करता है? सुडौल, तने हुए गोरे कंधों को देखकर उसे कोट हैंगर का विचार क्यों आता है, और पतले गोरे हाथ को देखकर उसे पेपर-वेट का ख्याल क्यों आ जाता है? किसीके कन्धों को तलियों में लेकर सहलाने और छाती से लगा लेने का ख्याल उसे क्यों नहीं आता, और किसीके हाथ को उठाकर अपने होंठों पर रख लेने का ख्याल उसे क्यों नहीं आता···

रवि ने अपने इस ख्याल को घेरकर अपने तक ले आना चाहा—अपनी 'समझ' तक। बिलकुल उसी तरह जैसे वह बहती नदी में पानी के उल्टे रुख तैरने की कोशिश कर रहा हो। सजीव अंगों को निर्जीव वस्तुओं के रूप में कल्पना करने से उसे ग्लानि अनुभव हुई। उसे लगा कि दूसरों के

अंग सजीव थे, पर उसके अपने अंगों में कुछ मर गया था। इसीलिए दूसरों के अंगों को स्पर्श करने का, सूंघने का और अपने अंगों में कस लेने का ख्याल उसे नहीं आता था। रवि ने जो कुछ उसके दिल में मृत था, उसे जिला कर देखना चाहा, और उसने आंखों पर ज़ोर देकर, नज़र गड़ाकर मोना के चेहरे की ओर देखा।

मोना रवि की बीवी की छोटी बहन थी। चौदह-पन्द्रह सालों की, पर रवि को आज तक वह एक छोटी-सी बालिका के रूप में ही दिखाई देती रही थी। वह मोना को हमेशा बच्चों की तरह डांटता था और बच्चों की तरह ही दुलारता था। और रवि ने अपने ख्यालों को घेरकर मोना की तरफ इस तरह देखा जैसे बहती नदी के पानी में उल्टे रुख जाकर मोना की एक झलक ले रहा हो। उसने पहली बार देखा कि मोना भर-पूर जवान लड़की थी। जवानी ने उसकी छाती को भर दिया था, उसकी गर्दन को भर दिया था, उसके कपोलों को भर दिया था और जवानी ने उसके होंठों पर लाली फूंक दी थी।

और रवि को लगा कि उसके अपने मन का रंग अब फीका पड़ चुका था। इस फीके रंग को गहराने के लिए रवि के मन में आया कि वह मोना के लाल रंग में डूबे हुए होंठों को अपने होंठों में लेकर चूम ले···

रवि को पहले कभी ऐसा ख्याल नहीं आया था, जिससे इस विचार के आते ही उसे दहशत हुई।···और उसे लगा कि एक पल पहले वह ख्यालों की जिस खामोश बहती हुई नदी में तैर रहा था, अब उस नदी के पानी पर एक सांप तैर आया था। यह अपने से दो हाथ दूर तैर रहे सांप को देखने की दहशत थी।

"जीजाजी! सो रहे हो या जागते हो?" मोना कागज़ के पास घुटनों के बल बैठ गई। रवि ने नज़र गड़ाकर मोना के चेहरे की ओर देखा। मोना का चेहरा उसी तरह मासूम और अल्हड़ था—जैसा रवि हमेशा देखता आया था। यह चेहरा जवानी की भड़कीली रोशनी में न खुद दहक रहा था, न ही किसी दूसरे में दहक पैदा कर रहा था। रवि ने एक बार फिर ख्यालों की बहती हुई नदी की तरफ देखा। अब नदी में तैरता सांप नहीं दिख रहा था।

रवि को लगा कि वह अपने होंठ नहीं हिला सकता था, वह सिर्फ नज़्म की खुशबुओं के जाल में उन होंठों की निगाहों को ही पकड़ सकता था। रवि के हाथों ने कागज़ उठा लिया और उसपर कुछ पंक्तियां लिख दीं।

नज़्म पूरी हो जाने पर रवि उतना थक चुका था कि उसे लगा जैसे नदी में तैरते-तैरते उसके अंगों में दुखन भर गई हो। नदी अब भी दोनों किनारों की सरहद में लगातार बहती जा रही थी।...और नदी में तैरना जो ख्वाब रवि ने देखा था, अब वह कहीं नज़र नहीं आ रहा था। अब रवि के मन में उलझन नहीं थी, सिर्फ थकावट थी।

अचानक रवि को सर्दी महसूस हुई। नदी का पानी पल-पल ठंडाता जा रहा था। वह किनारे को हाथों में कसकर नदी के बाहर आ गया और अपने बदन से ख्यालों के निचुड़े पानी को पोंछता हुआ डाक बंगले की तरफ बढ़ने लगा।

रवि की नज़्म ने उसकी देह का सारा ज़हर चूस लिया था। अब उसके अंग पहले की तरह स्वस्थ थे। सिर्फ उसे थकान और सर्दी महसूस हो रही थी। वह सोच रहा था कि वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ अपनी बीवी के गर्म बिस्तर में जाकर सो जाए।

पांच बहनें

एक विशाल देश की बात है। एक दिन ठंडे बिल्लौरी जल ने 'ज़िन्दगी' के सुन्दर अंगों को मलमलकर धोया। फूलों ने जी भरकर सुगन्ध लगाई, और सातों रंग ज़िन्दगी के लिए एक पोशाक ले आए। सूर्य ने अपनी किरणों से फूलों में रस भरा, और ज़िन्दगी ने अपनी आंखों में एक पूर्णता-सी भरकर पवन से कहा—

"सुना है इस शताब्दी की पांच पुत्रियां हैं, जवान और सुन्दर ?"

"हां।"

"आज मैं उनके घर जाऊंगी," ज़िन्दगी ने कहा।

पवन हंस दिया।

"मेरे पास पांच सौगातें हैं—एक-जैसी मूल्यवान्। मैं उन सबको एक-एक सौगात दूंगी। तुम चलोगे मेरे साथ ?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"सबसे पहले पांचों बहनों में से मैं बड़ी बहन के पास जाऊंगी।"

"अच्छी बात है। परन्तु उसके घर में खिड़कियां और दरवाज़े नहीं हैं। बस, एक ही दरवाज़ा है। उसका पति जब बाहर जाता है, तो जाते हुए वह बाहर से दरवाज़े में लोहे का ताला लगा जाता है। और फिर जब घर आता है, तो वही ताला बाहर से खोलकर घर के भीतर लगा लेता है।"

"तुम मुझे अपने अन्दर भर लो, एक सुगन्ध की तरह। मैं तुम्हारे

साथ उसके सब चली जाएगी।"

"हां, हां, सदियों-जन्मों के साथ में भागी ही जाता हूं। तब मैं किसी दराज में से भी ओझल नहीं हो सकता। जितने समय में मैं दीवारों को लांघकर उसके पास जाता हूं, उतने समय में ही मेरा अंग-अंग टूटने लगता है।"

पवन जिन्दगी को पास वाली गली में से बड़ी बहन के घर ले गया।

"इस घर की दीवार पर तो बहुत-सी तस्वीरें बनी हुई हैं—सैकड़ों तक होंगी, हजारों तक होंगी," जिन्दगी ने हैरान होकर देखा।

"यह दीवार सदियों से बनी हुई है। जब भी इस घर की कोई स्त्री इन सीमाओं को लांघे बिना इस घर में मर जाती है, तो इस देश के लोग उसकी तस्वीर इस दीवार पर बना देते हैं।"

"इस घर की कोई भी स्त्री इन सीमाओं से बाहर नहीं आती?"

"नहीं, कभी नहीं।"

"इन दीवारों का नाम क्या है?" जिन्दगी ने पूछा।

"परम्पराएं—कोई कुल की परम्परा है, कोई धर्म की परम्परा है, तो कोई समाज की परम्परा…"

"मैं इस घर की स्त्री को एक बार देखना चाहती हूं।"

"सूर्य की किरणों ने भी कभी इस घर की औरतों को नहीं देखा, तुम भला कैसे देखोगी!"

"यह बीसवीं सदी है, पवन! तुम कौन-सी बात कर रहे हो?"

"यहां सदियां घर के बाहर से ही निकल जाती हैं। भले ही दस सदियां इधर से उधर हो जाएं, इस घर में रहनेवालों को कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

"मैं उसके लिए भेंट लाई हूं।"

"तुम्हारी भेंट उस तक पहुंच भी जाए तो भी वह उसे हाथ न लगाएगी।"

"क्यों?"

"क्योंकि, दुनिया की सब चीजें उसके लिए वर्जित हैं।"

"वह मेरी आवाज नहीं सुनेगी?"

"नहीं, उसके कानों के लिए इस दीवार के बाहर से आनेवाली सब

आवाजें निषिद्ध हैं।"

"तुम भी क्या बातें करते हो पवन, आखिर वह जवान है ?"

"तुम वर्षों का हिसाब लगा रही हो। पर इस घर की औरत कभी जवान नहीं होती। जब वह बालिका होती है, तभी उसपर बुढ़ापा आ जाता है।"

जिन्दगी के पांव में एक कम्पन-सा हुआ, और वह हारी-सी, सहमी-सी आगे की ओर चल पड़ी।

"यह इस शताब्दी की दूसरी पुत्री है।" पवन ने कहा।

"कौन-सी ?"

"वह सामने रेल की पटरी पर कोयले चुन रही है।"

तीस वर्ष की एक स्त्री ने बाएं हाथ से, बगल के पास फटी हुई कमीज को दुपट्टे के पल्लू से ढांप लिया। दाएं हाथ से टोकरी में मुट्ठी भर कोयले डाले। कोई दसेक गज की दूरी पर पड़ी हुई अपनी लड़की को देखा। लड़की के रोने की आवाज अब तीखी हो गई थी। स्त्री ने टोकरी को एक ओर रख दिया और लड़की को अपनी गोद में ले लिया। लड़की ने मां की छाती पर कई बार मुंह मारा, पर उसे दूध का घोंगा न लग सका और वह फिर चिल्लाकर रो पड़ी। जिन्दगी ने समीप जाकर आवाज दी, "बहन !"

स्त्री ने शायद सुना नहीं। जिन्दगी और भी समीप आ गई और बोली, "बहन !" स्त्री ने अनजानी दृष्टि से एक बार देखा और फिर ध्यान दूसरी ओर कर लिया, जैसे सोच रही हो कि किसी और को आवाज दी है।

जिन्दगी के अधर जैसे तड़प उठे, "मेरी बहन !" स्त्री ने तब उसकी ओर देखा और लापरवाही से पूछा, "तुम कौन हो ?"

"मुझे जिन्दगी कहते हैं।"

स्त्री ने फिर अपना ध्यान अपनी रोती हुई लड़की की ओर कर लिया, जैसे राह चलते की बात से उसे क्या मतलब ?

"मैं तुम्हारे देश आई हूं, तुम्हारे शहर, तुम्हारे घर।" देश, शहर और घरवाली बात जैसे उस स्त्री की समझ में न आई।

"आज मैं तुम्हारे घर चलूंगी।"

स्त्री ने आंख से जिन्दगी के मुंह की ओर देखा, जैसे जिन्दगी को यह न चाहिए था कि इस तरह व्यंग्य करे।

"बच्ची को तुम क्यों नहीं दे रही हो, बेचारी रो रही है?"

स्त्री ने एक बार अपने सूखे हुए शरीर पर निगाह दौड़ाई, दूसरी बार बच्ची के सूखे हुए मुंह पर। फिर भी वह समझ न सकी कि इस सवाल का मतलब क्या था?

"यदि उसके पास दूध होता तो बच्ची को देती न।"

"तुम्हारा घर कितनी दूर है?"

"इस सड़क के पार।"

"मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"पर वहां घर नहीं, फूस का छप्पर है।"

"वही सही।"

"पर वहां चारपाई कोई नहीं, बस दो बोरियां हैं।"

"तुम्हारा पति?"

"वह बीमार है।"

"क्या काम करता है?"

"कारखाने मे मजदूर था, पर पिछले वर्ष जब छटनी हुई थी, तब उसे निकाल दिया गया था।"

"फिर?"

"एक वर्ष हो गया उसे बुखार आते।"

"तुम्हारी यह एक पुत्री ही है?"

"एक मेरा पुत्र भी है पर···"

"वह कहां है?"

"एक दिन वह भूखा था, बहुत भूखा। उसने एक अमीर आदमी की मोटर में से सेव चुरा लिया था। पुलिस वालों ने उसे जेल में डाल दिया।"

"मैं तुम्हारे घर चलूं?"

"पर तुम हो कौन?"

"मुझे ज़िन्दगी कहते हैं।"

"मैंने तो कभी तुम्हारा नाम नहीं सुना।"

"कभी, कभी छोटी उम्र में, छुटपन में तुमने कहानियां सुनी होंगी।"

"मेरी मां को बड़ी कहानियां याद थीं। मेरा पिता किसान था। पर वह उन किसानों में से था जिनके पास अपनी कोई जमीन नहीं होती। मेरी बड़ी बहन के विवाह पर हमने कर्ज लिया था, जो हमसे वापस न दिया जा सका। साहूकार ने हमारा सब माल, हमारे पशु आदि, सब-कुछ छीन लिया था···और मेरा पिता कहीं दूर किसी रोजी की तलाश में चला गया था। मेरी मां को रात-भर नींद न आती थी। वह रात को मुझे जगाकर कहानियां सुनाया करती थी—भूतों की, प्रेतों की, देवों की कहानियां। पर मैंने तुम्हारा नाम तो कभी नहीं सुना।"

"फिर तुम्हारा पिता क्या कमाकर लाया था?"

"मेरी मां कहा करती थी कि जब वह आएगा, बहुत-सा सोना लाएगा। पर वह कभी आया ही नहीं लौटकर।" और स्त्री ने जरा घबराकर कहा, "तुम क्या करोगी मेरे घर जाकर?"

"मैं···" जिन्दगी और कुछ न कह सकी। स्त्री कोयले की टोकरी थामे उठ खड़ी हुई।

"मैं तुम्हारे लिए सौगात लाई हूं," जिन्दगी ने रंग और सुगन्ध-भरी एक पिटारी स्त्री के सामने रख दी।

"न बहन, यह तुम अपने पास ही रखो।" स्त्री ने जैसे भयभीत हो आंखें दूर हटा ली।

"मैं तुम्हारे लिए ही लाई हूं।"

"न बहन, कल पुलिस वाले कहेंगे, तूने किसीकी चोरी कर ली है।"

स्त्री शीघ्रता से अपने घर की ओर मुड़ी। पर थोड़ी दूर जाकर जब उसने देखा कि जिन्दगी अब भी उसके पीछे-पीछे आ रही है, तो वह डरकर सहम गई।

"तुम लौट जाओ बहन! मेरे साथ मत आओ। मुझे बेगानों से बहुत डर लगता है। पहले भी एक बार···एक बार एक जवान-सा शहरी आया था। कहने लगा, मैं तुम्हारे पति को काम दिला दूंगा, तुम्हारे बेटे को जेल से छुड़ा दूंगा···पड़ोसियों से आटा मांगकर मैंने उसके लिए रोटी पकाई

…पर जब मैं अपने पुत्र को देखने के लिए उसके साथ बाहर गई… तो बाहर से…बाहर से वह…"

स्त्री का अंग-अंग कांप उठा और वह बेतहाशा वहां से भाग गई।

जिन्दगी की आंखों से छलक रहे आंसुओं को पवन ने अपनी हथेली से पोंछ दिया, "चलो मैं तुम्हें सौन्दर्य बहन के घर ले चलता हूं।"

जिन्दगी जब महल-नगीने एक घर के सामने से गुजरी, तो पवन ने धीरे-से उसके कान में कहा, "यही है उसका घर।"

द्वार पर खड़े दरबान ने जिन्दगी की राह रोक ली। दासी के हाथ भीतर संदेशा भेजा गया। जिन्दगी बाहर प्रतीक्षा में खड़ी रही, खड़ी रही …और जब उसे भीतर से बुलावा हुआ, तो वह उस दासी के पीछे-पीछे कांच के कई द्वारों को लांघती, रेशम के कई पर्दे हटाती खास कमरे में पहुंची।

सफेद मर्मरी पत्थर की एक औरत की मूर्ति कमरे के एक कोने में खड़ी थी। पानी की फुहार उसके बदन को ढांप रही थी। सफेद मर्मरी पत्थर-सी एक औरत की मूर्ति एक कोमल-सी कुरसी पर पड़ी थी रेशम के तार उसके बदन को ढांपने का यत्न-सा कर रहे थे। औरत की खड़ी मूर्ति में से तो कोई आवाज़ न आई, पर औरत की बैठी हुई मूर्ति में से आवाज़ आई—

"तुम कौन हो? मैं पहचान नहीं पाई।" जिन्दगी ने भौंचक-सी चारों ओर देखा। पर वहां कोई स्त्री न थी। तब उसने खड़ी हुई मूर्ति को हाथ लगाया। वह पत्थर-सी सख़्त थी। तब जिन्दगी ने बैठी हुई मूर्ति को स्पर्श किया। वह रबड़-सी मुलायम थी।

"मुझे ज़िन्दगी कहते हैं," ज़िन्दगी ने धीरे से कहा।

"याद नहीं आ रहा, यह नाम कहीं सुना हुआ प्रतीत होता है, शायद छुटपन में किसी पुस्तक में पढ़ा था।"

"पुस्तक में?"

"हां। मुझे याद आ गया, मेरे साथ एक लड़का पढ़ता था। वह गीत लिखता था, एक बार उसने मुझे अपने गीतों की एक किताब दी थी

उसमें यह नाम आया था।"

"वह अब कहां रहता है?"

"गरीब-सा लड़का था। पता नहीं कहां रहता है?"

"उसकी किताब?"

"इस नई कोठी में आते समय पुराना सामान मैं साथ नहीं लाई थी। यह सारा सामान हमने नया खरीदा है।"

"बहुत महंगा खरीदा है।"

"मेरा पति देश का बहुत बड़ा व्यक्ति है। अब के चुनाव में भी, मुझे आशा है, वह फिर बड़ा व्यक्ति चुना जाएगा। हम अब भी चाहें, ऐसा या इससे भी अच्छा सामान खरीद सकते हैं।

रबड़-जैसी मुलायम स्त्री की मूर्ति ने मेज पर रखे हुए फल जिन्दगी की ओर बढ़ाए। फलों को छूते ही जिन्दगी को उनमें से एक गंध-सी अनुभव हुई।

"मैंने अभी मजदूरों से ताजे फल तुड़वाए हैं। दासी ने शायद धोए नहीं। मजदूरों के हाथों की गंध आती होगी, आज गरमी है। मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं, आज…।"

"यदि तुम्हें अच्छा लगे, तो मैं तुम्हें बाहर ठंडी और खुली हवा में ले चलती हूं।" जिन्दगी ने एक सांस भरकर कहा।

"नहीं, नहीं। मैं इस तरह बाहर नहीं जा सकती। अपनी श्रेणी में बाहर के लोगों में उठने-बैठने से हमारा आदर नहीं रहता…अगर मैं जब मेरा ऑपरेशन हुआ था, कुछ कसर रह गई थी। कभी-कभी मुझे दर्द होता है…"

जिन्दगी ने उठकर उस रबड़ जैसी मुलायम स्त्री की भुजा पकड़ी। फिर उसके बदन पर हाथ रखा। तुम्हारा दिल क्यों नहीं धड़कता! पत्थर की तरह खामोश और ठंडा है…"

"यही तो कसर रह गई है। मेरा पति कहता है, अब हम किसी बाहर के देश जाएंगे…शायद अमेरिका; वहां के डॉक्टर बड़े सुन्दर हैं। मेरा ऑपरेशन शायद फिर होगा…"

"किस बात का ऑपरेशन है?"

"आजकल [illegible] लड़कियाँ [illegible] ब्याह कर आती हैं, विवाह की पहली रात [illegible] डाक्टर उनका आपरेशन करते हैं। यह बड़े घरों की रीत है..."

"विवाह की रात को आपरेशन!"

"हां, [illegible] उनका [illegible] निकाल देते हैं। उसकी [illegible] सिला [illegible] है, बड़ी सुन्दर [illegible]! [illegible] है। मेरे आपरेशन में थोड़ी-सी कसर रह गई थी। कभी-कभी [illegible] उठती है। इन चुनावों में मेरा पति यदि जीत गया, तो हम आगामी मास में हवाई जहाज द्वारा बाहर जाएंगे। फिर आपरेशन होगा, और मैं ठीक हो जाऊंगी।"

"मैं तुम्हारे लिए एक सौगात लाई हूं।"

"नहीं, नहीं। मेरे पति ने कहा है कि आजकल किसीसे कोई चीज नहीं लेनी है। चुनाव निकट आ गए हैं...और देश की बड़ी-बड़ी मिलों में हमारे पत्ती हैं। हमें ये छोटी-छोटी चीजें लेने की क्या आवश्यकता है?"

टेलीफोन की घंटी बजी और रबड़-जैसी मुलायम स्त्री ने टेलीफोन में दो-तीन मिनट बात करके पास बैठी हुई ज़िन्दगी से कहा—

"बहन, तुम्हें यदि मुझसे कोई काम है तो कभी फिर आ जाना। इस समय मेरा पति और उसकी पार्टी के कुछ लोग घर आ रहे हैं..."

पवन ने ज़िन्दगी का हाथ थाम लिया और उसे सहारा देकर चौथी बहन के घर ले आया। बड़ा साधारण-सा घर था। पर घर के द्वार के सामने एक चमकती हुई गाड़ी का मुंह आंखों को चौंधिया रहा था। संध्या होने वाली थी। ज़िन्दगी ने घर की सीमा लांघकर भीतर की ओर झांककर देखा। बाईस-तेईस वर्ष की जवान स्त्री एक बालक को थपकी देकर सुला रही थी। कमरे का सारा सामान मुश्किल से गुजारे लायक था, तो भी युवती के वस्त्र झिलमिल-झिलमिल कर रहे थे।

ज़िन्दगी ने धीरे से द्वार खटखटाया।

"कौन?"...धीरे से युवती दहलीज़ के पास आई, "बच्चा जा

आएगा।" तब युवती ने चौंककर कहा, "तुम···तुम···!" उसके बोल लड़खड़ा गए।

"मुझे ज़िन्दगी कहते हैं।"

"मुझे मालूम है।"

"तुम्हें मालूम है ?"

"मैं सारी उम्र तुम्हारी परछाईं के पीछे भागती रही हूं···अब मैं थक चुकी हूं। अब मैंने तुम्हारा रास्ता छोड़ दिया है। तुम चली जाओ। जहां से आई हो वहीं लौट जाओ। देख नहीं रही हो, मेरे द्वार पर शाप की एक रेखा खिंची हुई है। इस रेखा को तुम नहीं लांघ सकती। इस रेखा को मिटा नहीं सकती। तुम चली जाओ। चली जाओ···" युवती की सांस फूल गई।

"मेरी अच्छी बहन!"

"बहन! मैं किसीकी बहन नहीं। मैं किसीकी बेटी नहीं। मैं किसी की कुछ नहीं।"

"यह तुम्हारा बच्चा···" ज़िन्दगी ने कमरे में सोये पड़े बच्चे को देखा।

"मेरा बच्चा! मेरा बच्चा!! पर इसका बाप कोई नहीं।"

"मैं समझी नहीं।"

"जब मेरे देश में आज़ादी की नींव रखी गई थी, उसकी नींव में मेरी हड्डियां चुनी गई थीं। जब मेरे देश में स्वतन्त्रता का पौधा लगाया गया था, मेरे रक्त से उस पौधे को सींचा गया था। जिस रात मेरे देश में खुशी का चिराग जलाया गया, उसी रात मेरी इज़्ज़त और आबरू के पल्लू को आग लगी थी। यह बच्चा उसी रात की निशानी है, उसी आग की राख है, उसी ज़ख्म का दाग है···"

"मेरी दुखी बहन!"

"फिर मेरी सब रातें उस रात जैसी हो गईं···मैं तुम्हारे सपने देखा करती थी। मैं सोचती थी, तुम मेरे कुंआरे सपनों को मेंहदी लगाकर रंग दोगी; मेरी मां के सहन में देश के गीत गाए जाएंगे; और मैं अपने कानों से शहनाई की आवाज़ सुनूंगी···

……[illegible] मणियों का राजा था। मैं तुम्हारी परछाईं [illegible] जिन्दगी थी। जब मेरा [illegible] गया, मेरा जिस्म [illegible] मुझे एक सांप ने काट लिया। [illegible] और [illegible]······। मनुष्य-जैसे मुंहवाले [illegible], पर उम्र-भर उनके [illegible] फिर मेरी तुम्हारी एक और परछाईं होगी। [illegible] मुझे [illegible] लिया जाएगा। उनका [illegible] जाएगा। मैं फिर पहले जैसी भोली और [illegible] बन जाऊंगी। मैं भागी, तुम्हारी परछाईं के पीछे भागी···पर वह सब झूठ था, सब झूठ। मेरे नागों के राजा ने मुझे स्वीकार न किया। मुझे अपने घर की सीमाओं में वापस लौटा दिया··· मैं फिर उसी विष में जलने लगी। उन्हीं मणियों जैसे और नाग मेरे इर्द-गिर्द लिपट गए।··· बाहर यह [illegible] देख रही हो! बिजली चमक रही है··· यह एक बहुत बड़े नाग की [illegible] है···आज नाग मुझे फिर काटेगा···।"

जिन्दगी बोल न सकी। उसके हाथों में जो सौगात थी वह उसके आंसुओं से भीग गई।

"यह तुम क्या लाई हो सौगात मेरे लिए? देख नहीं रही हो, मेरा सारा शरीर विष से बुझा हुआ है। मैं जब तुम्हारी सौगात को हाथ लगाऊंगी, यह भी विषैली हो जाएगी। ये सुगंधियां···! यह रंग···मेरे रोम-रोम में विष रचा हुआ है, विष···विष···"

पवन ने बेसुध जिन्दगी के मुख पर अपने वस्त्र से हवा की। और जब जिन्दगी को कुछ सुध आई, पवन उसे पांचों में से सबसे छोटी बहन के घर ले गया···।

बीस वर्ष की एक मानवी युवती के आस-पास बहुत-सी पुस्तकें, साज़ और रंग बिखरे पड़े थे।

जिन्दगी ने सुख की एक सांस भरी। सामने बैठी हुई उस युवती ने अपनी उंगली से साज़ के तार को छेड़ा और एक मीठा-सा गीत वातावरण

बिखर गया। युवती गाती रही…उसकी आखो में सितारों जैसे आसू चमक रहे थे। और फिर उसने रंगों की बारीक रेखाओं से एक कागज पर बड़ी रगीन तस्वीर बनाई।

जिन्दगी का दिल चाहा कि उस युवती के कलाकार हाथो को चूम ले। स्वर, शब्द और चित्रो का एक जादू वातावरण में घुल रहा था।

जिन्दगी ने एक गहरी सास भरी। और हाथ मे रग और सुगंध की पिटारी लिये आगे बढ़ी। युवती की आखो में एक अचम्भा-सा भर गया।

"मुझे मालूम है," युवती बोली। पर उसके स्वागत के लिए उठकर आगे न बढी। अचानक जिन्दगी के पाव अटक गए। लोहे के बारीक तार कमरे के दरवाजे के सामने ऊचे उठ रहे थे।

"मैं इस समय तुम्हारा स्वागत नही कर सकती," युवती ने सिर झुका दिया।

"क्यो?" जिन्दगी हैरान थी।

"यदि तुम रात को आओ, जिस समय मैं सो जाऊ, मेरे सपनो में; या फिर जाग रही होऊ तो मेरी कल्पना मे, मै तुम्हारे साथ बहुत-सी बातें करूंगी, बहुत कुछ सुनाऊगी…वैसे मैं नित तुम्हारी परछाई पकड़ती हू।…यह देखो, इन रगों से मैंने तुम्हारा आचल बनाया है, इन तारो के स्पर्श से मैंने तुम्हारे गीत गाए है…इस लेखनी से मैंने तुम्हारे प्यार की कहानिया रची है।"

"आज जब मैं स्वय तुम्हारे पास आई हू… तुम…।"

"धीरे, बहुत धीरे। मेरे घर की सभी दीवारो मे छेद हैं… सैकड़ो और हजारो आखें मेरी रखवाली करती हैं। उधर देखो उन छेदो मे… तुम्हे हर एक छेद मे दो भयानक आखें दिखाई देगी। ये आखें लावे से भरी हुई हैं, और एक-एक जबान…इनमे से सैकडों तीर निकलते हैं।…यदि मैं तुम्हारे पास बैठ जाऊ, तुम्हारे पास!…इनके तीर अभी मेरी रंग-भरी प्यालियो को उलट देंगे…मेरे साज के तार उलझा देंगे…मेरे गीतों के एक-एक स्वर को बीध देंगे…और इन आसो का लावा…।"

"पर ये लोग तुम्हारे गीत सुनते हैं, तुम्हारी कहानिया पढ़ते हैं, तुम्हारे चित्रों को देखते हैं।"

—

"यहां के कलाकार तुम्हारी बातें कर सकते हैं, तुम्हारा मुंह नहीं देख सकते। और जो तुम्हारा मुंह देख ले, उस मंसूर को मौत की सजा दी जाती है।···अब तुम चली जाओ, जिन्दगी! कोई देख लेगा···मेरे कानों के अतिरिक्त ऐसा कोई स्थान नहीं जहां मैं तुम्हें छिपा सकूं···।"

"मैं तुम्हारे लिए एक सौगात लाई थी।"

"वह भी मैं उसी समय लूंगी···जरूर आना···मैं सातों स्वर्ग रचाऊंगी, तुम आना, तुम्हारी सौगात से अपने स्वर्ग सजाऊंगी। तुम जरूर आना···और फिर सुबह उठकर मैं तुम्हारे प्यार का गीत लिखूंगी, तुम्हारे रूप का चित्र बनाऊंगी, तुम्हारी सुन्दरता के गीत गाऊंगी···पर अब तुम चली जाओ, कोई देख लेगा···।" और युवती ने जिन्दगी की ओर से मुंह फेर लिया।

उधड़ी हुई कहानियां

मैं और केतकी अभी एक दूसरी की वाकिफ नहीं हुई थी कि मेरी मुस्कराहट ने उसकी मुस्कराहट से दोस्ती गाठ ली। मेरे घर के सामने नीम के और कीकर के पेड़ों से घिरा हुआ एक बाध है। बाध की दूसरी ओर सरसों और चनों के खेत हैं। इन खेतों की बाईं बगल में किसी सरकारी कालेज का एक बड़ा बगीचा है। इस बगीचे की एक नुक्कड़ पर केतकी की झोपड़ी है। बगीचे को सींचने के लिए पानी की छोटी-छोटी खाइयां जगह-जगह बहती हैं। पानी की एक खाई केतकी की झोंपड़ी के आगे से भी गुजरती है। इसी खाई के किनारे बैठी हुई केतकी को मैं रोज देखा करती थी। कभी वह कोई हंडिया या परात साफ कर रही होती और कभी वह सिर्फ पानी की अंजुलिया भर-भरकर चांदी के गजरों से लदी हुई अपनी बांहें धो रही होती। चांदी के गजरों की तरह ही उसके बदन पर ढलती आयु ने मांस की मोटी-मोटी सिलवटें डाल दी थीं। पर वह अपने गहरे सांवले रंग में भी इतनी सुन्दर लगती थी कि मांस की मोटी-मोटी सिलवटें मुझे उसकी उमर की सिंगार-सी लगती थीं। शायद इसीलिए कि उसके होंठों की मुस्कराहट में एक अजीब-सी भरपूरता थी, एक अजीब तरह की सन्तुष्टि, जो आज के जमाने में सबके चेहरों से खो गई है। मैं रोज उसे देखती थी और सोचती थी कि उसने जाने कैसे यह भरपूरता अपने मोटे और सांवले होंठों में संभालकर रख ली थी। मैं उसे देखती थी और मुस्करा देती थी। वह मुझे देखती और मुस्करा देती। और इस

लगता मुझे उसका चेहरा अंगीठी के गमलों के फूलों में से एक फूल जैसा ही लगा करता था। मुझे बहुत-से फूलों के नाम नहीं आते, पर उनका नाम, मैं आजतक भी पूछ रहा था—"ग्वार पठ्ठा।"

एक बार मैं कुछ दिन उसके अंगीठी के पास न जा सकी। तीसरे दिन जब गई तो उसकी आंखें कुछ इस तरह मिलीं जैसे तीन दिनों में नहीं, तीन सालों में मिल रही हों।

"क्या हुआ बिटिया ! इतने दिन आई नहीं ?"

"यहीं बहुत थी अम्मा ! बस किताब में ही बैठी रही।"

"सचमुच बहुत ज्यादा पढ़ना है तुम्हारे देश में।"

"तुम्हारा कौन-सा गांव है अम्मा ?"

"अब तो यह कोठरी भी, यही मेरा गांव है।"

"यह तो ठीक है, फिर भी अपना गांव अपना गांव होता है।"

"अब तो उस धरती से नाता टूट गया बिटिया ! अब तो यही कार्तिक मेरे गांव की धरती है और यही मेरे गांव का आकाश है।"

"यही कार्तिक" कहते हुए उसने अंगीठी के पास बैठे हुए अपने मर्द की तरफ देखा। आयु के बुढ़ेपन में झुका हुआ एक आदमी जमीन पर तीलें और तल्लियां बिछाकर एक चटाई बुन रहा था। दूर पड़े हुए कुछ गमलों में लगे हुए फूलों को सर्दी से बचाने के लिए शायद चटाइयों की आड़ देनी थी।

केतकी ने बहुत छोटे वाक्य में बहुत बड़ी बात कह दी थी। शायद बहुत बड़ी सच्चाइयों को अधिक विस्तार की जरूरत नहीं होती। मैं एक हैरानी से उस आदमी की तरफ देखने लगी जो एक औरत के लिए धरती भी बन सकता था और आकाश भी।

"क्या देखती हो बिटिया ! यह तो मेरी 'बिरंग चिट्ठी' है।"

"बैरंग चिट्ठी !"

"जब चिट्ठी पर टिक्कस नहीं लगाते तो वह बिरंग हो जाती है।"

"हां अम्मां ! जब चिट्ठी पर टिकट नहीं लगी होती तो वह बैरंग हो जाती है।"

"फिर उसको लेने वाला दुगुना दाम देता है।"

"हां अम्मा ! उसको लेने के लिए दुगने पैसे देने पड़ते हैं।"

"बस यही समझ लो कि इसको लेने के लिए मैंने दुगने दाम दिए हैं। एक तो तन का दाम दिया और एक मन का।"

मैं केतकी के चेहरे की तरफ देखने लगी। केतकी का सादा और सांवला चेहरा जिन्दगी की किसी बड़ी फिलासफी से सुलग उठा था।

"इस रिश्ते की चिट्ठी जब लिखते हैं तो गांव के बड़े-बूढ़े इसके ऊपर अपनी मोहर लगाते हैं।"

"तो तुम्हारी इस चिट्ठी के ऊपर गांव वालों ने अपनी मोहर नहीं लगाई थी ?"

"नहीं लगाई तो क्या हुआ ! मेरी चिट्ठी थी, मैंने ले ली। यह कातिक की चिट्ठी तो सिर्फ केतकी के नाम लिखी गई थी।"

"तुम्हारा नाम केतकी है ? कितना प्यारा नाम है। तुम बड़ी बहादुर औरत हो अम्मा !"

"मैं शेरों के कबीले में से हूं।"

"यह कौन-सा कबीला है अम्मा ?"

"यही जो जंगल में शेर होते हैं, वे सब हमारे भाई-बन्धु हैं। अब भी जब जंगल में कोई शेर मर जाए तो हम लोग तेरह दिन उसका मातम मनाते हैं। हमारे कबीले के मर्द लोग अपना सिर मुंडा लेते हैं, और मिट्टी की हंडिया फोड़कर मरने वाले के नाम पर दाल-चावल बांटते हैं।"

"सच अम्मा ?"

"मैं चकमक टोला की हूं। जिसके पैरों में कपिल धारा बहती है।"

"यह कपिलधारा क्या है अम्मा !"

"तुमने गंगा का नाम सुना है ?"

"गंगा नदी ?"

"गंगा बहुत पवित्र नदी है, जानती हो न ?"

"जानती हूं।"

"पर कपिलधारा उससे भी पवित्र नदी है। कहते हैं कि गंगा माता एक साल में एक बार काली गाय का रूप धारण कर कपिलधारा में स्नान करने के लिए आती है।"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] अन्नी की [illegible] उसका [illegible] देखकर [illegible] आंसू अन्नी पर गिर पड़े। वह नहीं [illegible] अब उसने [illegible] पानी [illegible] है।"

"और कपिलधारा में ?"

"इसमें तो मनुष्य की आत्मा को पानी मिलता है। मैंने कपिलधारा के [illegible] में स्नान किया और कार्तिक को अपना पति मान लिया।"

"तब तुम्हारी उमर क्या होगी अम्मा ?"

"सोलह बरस की होगी।"

"पर तुम्हारे मां-बाप ने कार्तिक को तुम्हारा पति क्यों न माना ?"

"बात यह थी कि कार्तिक की पहले एक शादी हुई थी। उसकी औरत मेरी सगी थी। बड़ी भली औरत थी। उसके घर सुन्दर-सुंदर दो बेटे हुए। दोनों ही बेटे एक ही दिन जनमे थे। हमारे गांव का 'गुनिया' कहने लगा कि यह औरत अच्छी नहीं है। इसने एक ही दिन अपने पति का संग भी किया था और अपने प्रेमी का भी। इसीलिए एक की जगह दो बेटे जनमे हैं।

"उस बेचारी पर इतना बड़ा दोष लगा दिया ?"

"पर गुनिया की बात को कौन टालेगा। गांव का मुखिया कहने लगा कि रोपी को प्रायश्चित्त करना होगा। उसका नाम रोपी था। वह बेचारी रो-रोकर आधी रह गई।"

"फिर ?"

"फिर ऐसा हुआ कि रोपी का एक बेटा मर गया। गांव का गुनिया कहने लगा कि जो बेटा मर गया वह पाप का बेटा था इसीलिए मर गया।"

"फिर?"

"रोपी ने एक दिन दूसरे बेटे को पालने में डाल दिया और थोड़ी दूर जाकर महुए के फूल टलियाने लगी। पास की झाड़ी से भागता हुआ एक हिरन आया। हिरन के पीछे शिकारी कुत्ता लगा हुआ था। शिकारी कुत्ता जब पालने के पास आया तो उसने हिरन का पीछा छोड़ दिया और पालने में पड़े हुए बच्चे को खा लिया।"

"बेचारी रोपी।"

"अब गांव का गुनिया कहने लगा कि जो पाप का बेटा था उसकी आत्मा हिरन की जून में चली गई। तभी तो हिरन भागता हुआ उस दूसरे बेटे को भी खाने के लिए पालने के पास आ गया।"

"पर बच्चे को हिरन ने तो कुछ नहीं कहा था। उसको तो शिकारी कुत्ते ने मार दिया था।"

"गुनिए की बात को कोई नहीं समझ सकता बिटिया! वह कहने लगा कि पहले तो पाप की आत्मा हिरन में थी, फिर जल्दी से उस कुत्ते में चली गई। गुनिया लोग बात की बात में करवा डालते हैं। कसाई का नन्दा जब शिकार करने गया था तो उसका तीर किसी हिरन को नहीं लगा था। गुनिया ने कह दिया कि जरूर उसके पीछे उसकी औरत किसी गैर मर्द के साथ सोई होगी, तभी तो उसका तीर निशाने पर नहीं लगा। नन्दा ने घर आकर अपनी औरत को तीर से मार दिया।"

"अरे!"

"गुनिया ने बाकिर से कहा कि वह अपनी औरत को जान से मार डाले। नहीं मारेगा तो पाप की आत्मा उसके पेट से फिर जनम लेगी और उसका मुंह देखकर गांव की भैंसिया सूख जाएंगी।"

"फिर?"

"बाकिर अपनी औरत को मारने के लिए तैयार न हुआ। इससे गुनिया भी नाराज हो गया और गांव के लोग भी।"

"गांव के लोग नाराज हो जाते हैं तो क्या करते हैं?"

"[illegible] है। [illegible] कि अगर गुनिया [illegible] कर [illegible] जाएगा। [illegible] कालिक का [illegible] [illegible]।"

"[illegible] कि अगर कोई [illegible] अपनी आग को [illegible] ?"

"क्या, [illegible] क्या होता ?"

"[illegible] नहीं [illegible] ?"

"[illegible] नहीं [illegible]। पुलिस तो तब [illegible] है जब गांववाले [illegible] हैं। पर [illegible] किसीको मारना ठीक समझते हैं तो पुलिस [illegible] नहीं [illegible] हैं।"

"फिर क्या हुआ ?"

"[illegible] आकर महुए के पेड़ से रस्सी बांध ली और अपने गले में डालकर मर गई।"

"[illegible] बेगुनाह थी !"

"गांववालों ने तो समझा कि बात खतम हो गई। पर मुझे मालूम था कि बात खतम नहीं हुई। क्योंकि कालिक ने अपने मन में ठान लिया था कि वह गुनिया को जान से मार डालेगा। यह तो मुझे मालूम था कि गुनिया जब मर जाएगा तो जरूर राक्षस बनेगा।"

"वह तो जीते जी भी राक्षस था !"

"जानती हो राक्षस क्या होता है ?"

"क्या होता है ?"

"जो आदमी दुनिया में किसीको प्रेम नहीं करता, वह मरकर अपने गांव के दरख्तों पर रहता है। उसकी रूह काली हो जाती है, और रात को उसकी छाती से आग निकलती है। वह रात को गांव की जवान लड़कियों को डराता है।"

"फिर ?"

"मुझे उसके मरनेका तो गम नहीं था। पर मैं जानती थी कि कालिक ने अगर उसको मार दिया तो गांववाले कालिक को उसी दिन तीरों से मार देंगे।"

"फिर ?"

"मैंने कार्तिक को कपिलधारा में खड़े होकर वचन दिया कि मैं उसकी होकर रहूंगी। हम दोनों इस देश से भाग जाएंगे। मैं जानती थी कि कार्तिक उस देश में रहेगा तो किसी दिन गुनिया को जरूर मार देगा। अगर वह गुनिया को मार देगा तो गांववाले उसको मार देंगे।"

"तो कार्तिक को बचाने के लिए तुमने अपना देश छोड़ दिया ?"

"जानती हूं, वह धरती नरक होती है जहां महुआ नहीं उगता। पर क्या करती ? अगर वह देश न छोड़ती तो कार्तिक जिन्दा न बचता और जो कार्तिक मर जाता तो वह धरती मेरे लिए नरक बन जाती। देश-देश इसके साथ घूमती रही। फिर हमारी रोपी भी हमारे पास लौट आई।"

"रोपी कैसे लौट आई ?"

"हमने अपनी बिटिया का नाम रोपी रख दिया था। यह भी मैंने कपिलधारा में खड़े होकर अपने मन से वचन लिया था कि मेरे पेट से जब कभी कोई बेटी होगी, मैं उसका नाम रोपी रखूंगी। मैं जानती थी कि रोपी का कोई कसूर नहीं था। जब मैंने बिटिया का नाम रोपी रखा तो मेरा कार्तिक बहुत खुश हुआ।"

"अब तो रोपी बहुत बड़ी होगी ?"

"अरी बिटिया ! अब तो रोपी के बेटे भी जवान होने लगे। बड़ा बेटा आठ बरस का है और छोटा छः बरस का। मेरी रोपी यहां के बड़े माली से ब्याही है। हमने दोनों बच्चों के नाम चुन्दरू-मुन्दरू रखे हैं।"

"वही नाम जो रोपी के बच्चों के थे ?"

"हां, वही नाम रखे हैं। मैं जानती हूं, उनमें से कोई भी पाप का बच्चा नहीं था।"

मैं कितनी देर केतकी के चेहरे की तरफ देखती रही। कार्तिक की वह कहानी जो किसी गुनिए ने अपने निर्दयी हाथों से उधेड़ दी थी, केतकी अपने मन के सुच्चे रेशमी धागे से उस उधड़ी हुई कहानी को फिर से सी रही थी। यह एक कहानी की बात है। और मुझे भी मालूम नहीं, आपको भी मालूम नहीं कि दुनिया के ये 'गुनिए' दुनिया की कितनी कहानियों को रोज उधेड़ते हैं।

अजनबी

न जाने क्यों, लोकनाथ को अपने जीवन की हर बात किसी न किसी जानवर की सूरत में याद आती थी। बचपन के कितने ही पल एक अघाई हुई बिल्ली की तरह म्याऊं-म्याऊं करते हुए उसके पास से गुजर जाते थे। उन पलों को जैसे उसकी मां ने अभी-अभी दूध से भरी हुई कटोरी पिलाई हो, और उनके भूरे झबरीले बालों को उसके बाप ने जैसे अभी-अभी अपने हाथों से सहलाया हो।

लोकनाथ का छोटा भाई प्रेमनाथ अब नेवी में था। इकहरे बदन का खूबसूरत-सा नौजवान। पर छुटपन में वह पढ़ाई में भी उतना ही कमजोर था जितना कि वह शरीर से दुबला था। लोकनाथ जब उसे पढ़ाने के लिए कभी अपने पास बिठाता था तो किताब के अक्षरों पर सिकुड़ी हुई उसकी आंखें, कई बार अचानक सहम से फैलकर लोकनाथ का चेहरा ताकने लगती थीं। और फिर जब लोकनाथ उसे दिलासा देता था तो जैसे मिन्नत सी करती हुई उसकी आंखें पिघलने लग जाती थीं। और अब नेवी का अफसर बनकर वह नई-नई बन्दरगाहों पर जाता था और वहां से तस्वीरें खींचकर लोकनाथ को भेजता था तो लोकनाथ को उसके साथ बिताए हुए पलों की याद ऐसे आती थी जैसे एक छोटा-सा पिल्ला पूंछ हिलाते हुए अपनी गीली जीभ से उसकी तली को चाटने लगा हो।

उसने किसी राजनीतिक पार्टी में कभी दखल देना नहीं चाहा था। पर अनुभव की भूख कई बार उसे मीटिंगों में ले जाती थी। वह नहीं

जानता कब खुफिया पुलिस ने अपने कागजों में उसका नाम दर्ज कर लिया था और उसके बारे में अपनी लम्बी-चौड़ी राय बना रखी थी। उसकी डिग्रियों से घबराकर जब कभी कोई सरकारी दफ्तर उसे नौकरी का वचन दे देता तो पुलिस की यही लम्बी-चौड़ी राय उस वचन को एक ही झटके में तोड़कर रख देती। अब जब कि लोकनाथ एक कालेज का प्रोफेसर था और अपने लिए उसने एक निश्चित स्थान बना लिया था तो कई परेशान लमहों की याद उसे उन चीलों और बन्दरों की सूरत में याद आती थी जो न जाने कहाँ से आते थे और उसके हाथों को खरोंचकर रोटी का टुकड़ा छीनकर ले जाते थे।

सरकारी दफ्तरों की धीमी रफ्तार उसे केंचुओं-सी लगती। किसी भी कार्यालय के रास्ते में पेश आने वाली ईर्ष्या उसे साँप की तरह फुफकारती सुनाई देती। कइयों की ईर्ष्या और जलन को उसने अपने शरीर पर झेला था—भैंस के सींगों की तरह। अपने सगे-सम्बन्धियों के फिजूल उलाहनों और रूठने के पत्र उसे आलमारी में घुसे हुए चूहे मालूम होते थे जो कीमती कागजों को कुतरते चले जाते हैं।

लोकनाथ को अपनी बीवी बहुत पसन्द थी। इस बीवी को, लोकनाथ का दिल कहता था, कि उसने किस्सा-कथाओं के इश्क से भी ज्यादा इश्क किया था। उसके साथ बिताई और बीत रही घड़ियाँ लोकनाथ की नजर में ऐसी थीं जैसे नन्ही-नन्ही चिड़ियाँ उसके आसपास चहकती हों, जैसे कूजों की एक कतार बादलों को काटकर गुजरी हो, जैसे घुगियों के कुछ जोड़े उसकी खिड़की में आकर बैठ गए हों, जैसे सुग्गों का एक झुण्ड उसके आँगन के पेड़ पर आ बैठा हो। अपनी बीवी के संग, और बीवी के नाम लिखे हुए अपने सब लोकनाथ को हमेशा उन कबूतरों-से लगते थे जो किसी दीवार की ओट में घोंसला बनाने के लिए तिनके जोड़ते रहते हैं।

विवाह से पहले लोकनाथ अपनी बीवी को उसके जन्मदिन पर एक किताब भेंट किया करता था। विवाह के बाद हर साल उसके जन्मदिन पर उसके होंठ चूमता था और कहता था, "मेरी उमर का यह साल एक किताब की तरह तुम्हारी नज़र ..."

[illegible] की तरह सौगात [illegible] उसकी बीवी का कोई [illegible] एक [illegible]।

[illegible] की बात है—एक [illegible] था। रात को [illegible] उसने अपनी आल-मारी में रखा था। [illegible] उसकी बीवी का अपना जन्मदिन [illegible] बहुत पुरानी सहेली [illegible] और उसने उसे मिलने के लिए [illegible] था। लोकनाथ ने सुबह अपनी बीवी को चौंकाने के लिए केक लाकर आलमारी में छुपा दिया था। पर सुबह जब वह उठा तो उसके माथे में [illegible] दर्द हो रहा था। बीवी के साथ उसने चाय भी पी और केक भी खाया, उसे चौंकाया भी, उसके गले लगकर उसे अपनी उमर का एक साल किताब की तरह सौगात में भी दिया। पर उसके बाद वह सारा दिन चारपाई से नहीं उठ सका। उस दिन वह सोच रहा था कि जो किताब इस बार उसने अपनी बीवी को दी थी, उस किताब का एक पन्ना उसमें से फटा हुआ था। उस रात वह फटा हुआ पन्ना किसी जानवर के टूटे हुए पंख की तरह उसकी छाती में हिलता रहा।

लोकनाथ की ज़िन्दगी के कुछ पल मासूम उड़ते परिन्दों की तरह थे, कुछ पालतू परिन्दों की तरह और कुछ जंगल के जानवरों की तरह। पर किसी पल से वह कभी डरा नहीं था, चौंका भी नहीं था। पर एक—लोकनाथ की ज़िन्दगी में एक वह घड़ी भी आई थी—मुश्किल से पन्द्रह मिनटों के लिए—जो एक बार एक चमगादड़ की तरह उसके मन में चली आई थी और बेशक होश-हवास की सारी खिड़कियां खुली थीं, पर वह घड़ी एक अन्धे चमगादड़ की तरह बार-बार दीवारों से टकराती रही थी और बार-बार लोकनाथ के कानों पर झपटती रही थी। लोकनाथ ने घबराकर कानों पर हाथ रख लिए थे और कुछ मिनटों के लिए उसे आवाज़ें सुनाई नहीं दी थीं, उसकी ज़मीर की आवाज़ भी नहीं, पर एक

आवाज़ थी जो उस समय भी कनपटियों में उसे सुनाई देती रही थी, और खून की इस आवाज़ से छुटकारा पाने के लिए उसने ··

बाईस साल बीत गए थे। पर वह घड़ी, मुश्किल से पन्द्रह मिनटों की वह घड़ी, लोकनाथ को जब कभी याद आ जाती—याद नहीं आती थी बल्कि चमगादड़ की तरह उसके सिर पर उड़ती थी—तो लोकनाथ घबराकर उसे जल्दी बाहर निकाल देने के लिए उसके पीछे दौड़ने लगता था।

इस चमगादड़ जैसी घड़ी के आने का कोई समय नहीं था। कभी 'फ़ायड' के पन्ने उलटते हुए वह अचानक आ जाती थी तो कभी किसी खूबसूरत कविता को पढ़ते हुए भी वह दिखाई दे जाती। एक बार अपने नये जनमे बेटे की गर्दन में से दूध की महक सूंघते हुए भी लोकनाथ को वह चमगादड़ दिखाई दी थी। और आज जब लोकनाथ की बड़ी बेटी सुचेता, मायके में प्रसूत-काल काटकर ससुराल जाने लगी थी, और नन्हे से बालक को झोली में लेकर जब उसने अपने बाप से मिन्नत की थी कि उसकी छोटी बहन रीता को वह कुछ दिनों के लिए उसके साथ ससुराल भेज दें क्योंकि छोटा-सा बालक शायद उससे अकेले न सम्भले, तो लोकनाथ के चेहरे का रंग पीला पड़ गया था।·· एक चमगादड़ उसके सिर पर मंडराने लगा था। आंगन में बैठी उसकी बीवी, उसकी बेटी, उसे लेने आया उसका खाविन्द, झोली में पड़ा बच्चा, कुछ दूर पर बैठी उसकी दूसरी बेटी, आंगन में कैरम खेल रहा उसका बेटा—सारे के सारे जैसे ओझल हो गए। होश-हवास की सारी खिड़कियां खुली थीं, पर एक अंधा चमगादड़ दीवारों से सर पटक रहा था, लोकनाथ के कानों पर झपट रहा था, और लोकनाथ उसे जल्दी से बाहर निकाल देने के लिए अपने मन की सारी नुक्कड़ों में दौड़ने लगा।

यह चमगादड़ एक स्मृति थी। बात बाईस साल पहले की थी—लोकनाथ के घर जब पहला बच्चा हुआ था, यही सुचेता। लोकनाथ की बीवी बेहद कमज़ोर हो आई थी। अपनी बीवी को मायके से अपने घर लाने की जगह वह उसे पहाड़ पर ले गया था। छोटा-सा बच्चा न उससे सम्भल रहा था न उसकी बीवी से। इसलिए वह अपनी बीवी की छोटी बहन को भी अपने साथ पहाड़ पर ले गया था। पन्द्रह सालों की वह उम्र उसे बिल-

[illegible] दिखाई देती थी [illegible] अपनी बेटी की तरह ही कुछ [illegible] थी । कई बार बच्ची जब माँ की [illegible] के लिए [illegible] आगे [illegible] में आया था । उसकी [illegible] थी । [illegible] ओर के पेड़ों के नीचे खड़े हुए [illegible] थी । उर्मी [illegible] थी तो लोकनाथ उसे [illegible] के लिए [illegible] था । उसने यह कभी [illegible] था कि इस उर्मी को उसके हाथों कभी ठेस भी लग सकती थी । एक बार [illegible] के लिए [illegible] उसने अपनी बच्ची की गर्दन को चूमा । [illegible] दूध और पाउडर की अजीब-सी गन्ध आ रही थी । बच्ची की माँ भी बच्ची के पास लेटी हुई थी । लोकनाथ ने उसके कान के पास होकर धीरे से अपने होंठ छुआए तो बच्ची वाली गन्ध उसे अपनी बीवी के बालों में से भी आई । और फिर उसी दिन की बात है, सैर करते हुए जब उसने उर्मी का हाथ पकड़कर उसे फिसलाई चढ़ाई पर चढ़ने के लिए सहारा दिया और उसके कन्धे को छूती हुई उसकी सांस में से भी उसे वही गन्ध आई । लोकनाथ अपनी बीवी को मजाक करता आया था और उर्मी से भी बोला, "बेबी का सोफिया दूध लगता है तुम दोनों को भी अच्छा लगने लगा है ।"

इसके आगे लोकनाथ को नहीं मालूम कि क्या कैसे हुआ । एक गन्ध थी जो उसके गले सिमट आई थी—सोफिया दूध की, पाउडर की, गुदाज चमड़ी की, औरत के अंगों की, और चीड़ के पेड़ों की । और लोकनाथ को लगा कि जंगल की खुली हवा में भी उसका दम घुट रहा था । और फिर यह गन्ध कुहासे की तरह उठी और उसके गले से होकर माथे में छा गई । और फिर सारे चेहरे उस कुहासे की ओट में छुप गए—उर्मी का चेहरा, उसकी बीवी का चेहरा, उसकी बच्ची का चेहरा । चेहरों का अहसास होता था—पर पहचाने नहीं जाते थे । फिर लोकनाथ को लगा कि दूर-पास कहीं कोई बस्ती नहीं थी । जहां तक नज़र जाती थी—वहां तक सिर्फ खंडहर ही थे । फिर किसी खंडहर में से चमगादड़ों की एक तेज़ गन्ध उठी और उसके सिर में छा गई । फिर उसे लगा कि किसी दीवार की ओट से निकलकर एक [illegible] कानों पर झपटने लगा था ।

उसने घबराकर दोनों हाथ कानों पर रख लिए थे। कुछ मिनटों के लिए उसे कोई आवाज़ सुनाई नहीं दी थी—जमीर की आवाज भी नहीं, पर एक आवाज उसे अब भी सुनाई दे रही थी—सुनाई कानों में नहीं दे रही थी बल्कि खून की हर एक बूंद से उठ रही दिखती थी।

यह जैसे एक बहुत बड़ी साजिश थी। ज़मीर की आवाज़ के ख़िलाफ़ खून की आवाज़ की साजिश थी—चेहरे की हर पहचान के खिलाफ एक बूंद की साजिश थी—जंगल की खुली हवा के खिलाफ एक गन्ध की साजिश थी—हर आबादी के खिलाफ हर खण्डहर की साजिश थी।

लोकनाथ किसीकी कोई साज़िश न समझ सका। पन्द्रह मिनटों का वह समय अब उसकी उमर से टूटकर एक अंग की तरह दूर जा पड़ा तो लोकनाथ को लगा कि उसकी सारी जिन्दगी अपाहिज बनकर रह गई थी।

उस शाम जब वह घर लौटा, उसकी बीवी के कमरे में जो मोमबत्ती जग रही थी, लोकनाथ को लगा, उस मोमबत्ती की लपट, उसके चेहरे की तरफ देखकर थरथराती हुई जैसे जल्दी से बुझ जाना चाहती थी।

जब रात घिर आई तो अंधेरा लोकनाथ को अच्छा लगा। पर फिर उसे लगा कि एक अंधेरा उसकी छाती में घिर आया था। अंधेरे का एक टुकड़ा रात के अंधेरे से टूटकर अलग आ पड़ा था। रात का अंधेरा तालाब के पानी की तरह ठहरा हुआ था जिसमें से एक गन्ध उठ रही थी। उस रात लोकनाथ को कितने ही खयाल आए। उसे लगा कि वे सारे खयाल इस तालाब में तैरते हुए मच्छरों जैसे थे।

दूसरे दिन वह पहाड़ से लौट आया था। उर्मी को उसके मां-बाप के पास छोड़ आया था। और फिर उर्मी को उसके विवाह के दिन, एक बार भरे आंगन में मिलने के सिवा, वह कभी नहीं मिला था। वह एक सारी थी, जिसे वह सारी उमर अपने को गैरहाज़िर रखकर उर्मी से मांगता रहा था।

"पापाजी!" सुचेता ने एक मिन्नत से लोकनाथ की ख़ामोशी तोड़नी चाही। और धीरे से बोली, "आप क्या सोच रहे हैं, पापा? मैं भी जानती हूं आप न नहीं करेंगे।"

"क्या?" लोकनाथ ने हैरान होकर अपनी बेटी की तरफ देखा। यह

[illegible] कभी नहीं हारती थी। पर [illegible] मिलकर एक साजिश [illegible] नहीं लग रहे थे।

[illegible] यह भाभी मुझसे संभ-लती नहीं..." [illegible] मां ने भी हामी भरी, [illegible] यहीं छुट्टियों का एक महीना और है...एक महीना [illegible] राजेन्द्र भी जोर डाल रहे हैं।"

"राजेन्द्र [illegible] है," लोकनाथ को ख्याल आया और फिर [illegible] देखते हुए उसे लगा कि कोई होनी एक पागल कुत्ते की तरह—इस अन्धे लड़के को काटने के लिए तिलमिला रही थी। यह जानकर खुश हो गया जैसे वह उसे पागल कुत्ते से बचा सकता था। "मैं अगले महीने खुद आकर शीला को छोड़ जाऊंगा," राजेन्द्र ने धीरे से कहा।

"नहीं, बिल्कुल नहीं।" लोकनाथ ने जरा सख्ती से कहा। सबने घबराकर पहले लोकनाथ की ओर देखा, फिर एक-दूसरे की ओर, ऐसे जैसे उन्होंने लोकनाथ की आवाज नहीं सुनी थी, किसी बड़े अजनबी की आवाज सुनी थी।

एक वृत्तान्त

'अपनी आग से खुद ही जल गए कुकनूस की राख में से—यूनानी मिथ के अनुसार — जैसे एक नया कुकनूस जन्म लेता है,' सुकुमार को लगा, 'कौनि से उसका पहला रिश्ता बिल्कुल खत्म हो गया था, और उसी खत्म हुए रिश्ते की राख में से एक नये रिश्ते ने जन्म ले लिया था...'

'एक गैर मर्द से एक जवान हो रही लड़की की वाकफियत हमेशा समय और अपने वर्ग के संस्कारों को साथ लेकर चलती है,' सुकुमार ने सोचा, 'उसकी और कौनि की वाकफियत भी जिन संस्कारों को साथ ले आगे बढ़ी थी, उसके मुताबिक उनका एक-दूसरे को बहिन-भाई कहना बिल्कुल स्वाभाविक था।'

'आदमी आगे बढ़ता है,' सुकुमार ने फिर सोचा, 'पर संस्कार एक सीमा पर आकर ठहर जाते हैं। आदमी बुद्धि के सहारे आगे बढ़ता है, संस्कार पांवों के सहारे...पांवों की थकावट एक सीमा से आगे बढ़कर पांव के छाले बन जाती है, जख्म भी बन सकती है... शायद इसीलिए संस्कारों को अपने पांवों का बहुत ध्यान रहता है...'

'पर सोच कहीं भी पहुंच सकती है,' सुकुमार के होंठों पर एक हल्की-सी मुस्कान आ गई, 'एक जन-सभी से मार्क्स तक...'

'मैंने जब भी राजनीति को अपनाया...,' सुकुमार ने अपने बीते दिनों को याद करना चाहा, 'उस नहर के उद्देश्य से प्रभावित होकर नहीं वह घर के एक खास तरह के माहौल से निकलने का मेरा प्रयास मात्र,

[illegible] कोशिश नहीं की, [illegible] अपनी [illegible]—शब्द-शब्द में [illegible] से। [illegible] देखना चाहता था, पर मैं [illegible] लिए कहना चाहता था…'

[illegible] उसे समझ [illegible] जैसे घर के सामने वाले दरवाजे की तरह था, और जिसे बन्द कर उसकी चाबी पिता ने अपनी जेब में डाल रखी थी—पर राजनीति घर के पीछे की ओर रात को खुली रह गई खिड़की की तरह थी… और जैसे बाहर खुलने वाले दरवाजे को एक दिन [illegible] नजर से देखा था, और फिर उस खिड़की में से आधी रात के अंधेरे में कूद गया था, सुकुमार ने आज से [illegible] वर्ष पहले की उस घटना के बारे में सोचा, जब उसने एक दिन [illegible] अपने मां-बाप के घर से निकल राजनीति का सहारा लिया था।

'आदमी के विचारों तथा आवश्यकताओं को कहने, सुनने और समझने वाला बहिन-भाई का सम्बन्ध भी घर के उस बाहर वाले दरवाजे की तरह ही होता है, जिसकी चाबी उस रिश्ते ने अपनी जेब में डाली हुई होती है,' सुकुमार को हंसी आ गई 'पर स्त्री तथा पुरुष का एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक आकर्षण घर के पीछे की ओर रात को खुली रह गई उस खिड़की की तरह होता है, जिसमें से मनुष्य के विचार तथा आवश्यकताएं किसी न किसी रात को बाहर के अंधेरे में छलांग लगा देते हैं…'

और सुकुमार को याद आया कि कीर्त्ति से जब उसकी वाकफियत हुई थी, वह अपनी राजनीतिक पार्टी के अखबार का सहायक सम्पादक था। कीर्त्ति, दसवीं में पढ़ने वाली एक लड़की थी। एक दिन बड़े उत्साह से एक लेख लिख वह उसके पास आई थी। अपनी हैड मिस्ट्रैस से एक सिफारिशी चिट्ठी भी साथ लाई थी। भले ही उसने यह लेख छापा नहीं था, पर और अच्छा लिखने के लिए उसे कई सुझाव दिए थे। फिर कीर्त्ति अक्सर उसके पास आती रही थी। उसने कई किताबें कीर्त्ति को पढ़ने के

लिए दी थी, और जब कीर्ति ने बड़े भोलेपन तथा सादगी से उसे भाई साहब कहा था, तो उसने उसी सादगी से उस संबोधन को स्वीकार कर लिया था।

फिर दो वर्ष वे मिलते रहे थे। तब वह कीर्ति के शहर बम्बई में था। और फिर उसे वह शहर छोड़ना पड़ा था। वह शहर-शहर घूमता रहा था, पर कीर्ति के पत्र उसे सब जगह मिलते रहे थे। फिर दो वर्ष पश्चात् एक दिन कीर्ति का ऐसा पत्र आया था, जिसमें वही पहले वाला सम्बोधन था—'भाई साहब!' पर पत्र की बाकी इबारत कुछ इस प्रकार थी जैसे बहिन-भाई के रिश्ते वाले बंद दरवाज़े को उसकी उन्मादी उमंगों ने एक बार बड़ी हसरत से देखा हो, और फिर मर्द और औरत के स्वाभाविक आकर्षण वाली पीछे की खिड़की में से बाहर अंधेरे में छलांग लगा दी हो···पत्र में लिखा था—'मेरी मां और मेरा बड़ा भाई मेरा विवाह कर देने के लिए उतावले हो रहे हैं। आप चाहते हैं, मैं पढ़ूं, बहुत पढ़ूं। मैं विवाह नहीं करना चाहती, पर कोई मेरी बात नहीं सुनता। बड़ी उदास हूं, सोचती हूं···अगर आप पास हों तो आपकी छाती से लग खूब रोऊं। दोनों बांहें आपके गिर्द डाल दूं, फिर आप मुझे अपनी बांहों में कस लें। मेरी छाती में धड़कता सब-कुछ अपनी छाती में भर लें···'

इस दौरान सुकुमार की सोच के कदम बड़ी तेजी से आगे बढ़े थे। उसके अन्दर का राजनीतिक वर्कर बहुत पीछे रह गया था। और अब जो कुछ उसके गिर्द था, या उसके साथ था, उसे भी वह केवल दूर से ही देख रहा था। उसके अंदर रहकर भी दूर से देख रहा था···कालू के 'आउटसाइडर' की तरह··· वैसे इन्सान के मन को देखने-समझने की उसकी दिलचस्पी कायम थी···किसी एक व्यक्ति से, भले ही वह एक हसीन औरत ही क्यों न हो, उलझकर और उसके बीच शरीक होकर, या उसे खुद में जज़्ब कर, देखने या समझने की तरह नहीं···एक फासले पर खड़े हो एक दर्शक की तरह देखने और समझने की मानिन्द!

पत्र के साथ कीर्ति ने उसे अपनी एक तस्वीर भेजी थी छोटी-सी। उत्तर में सुकुमार ने उससे उसकी एक बड़ी तस्वीर की मांग की। उसके बाद एक और तस्वीर की मांग की—वे तस्वीरें कभी सामने से ली हुई

[illegible] क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible] थी।

[illegible] ऐसे किसी निजी [illegible] सार्त्र [illegible] था। सार्त्र ने [illegible] सुकुमार ने अपनी ओर [illegible] शक्ति उसी तरह बन [illegible] पास नहीं था।

[illegible] प्रमाद को रचना हुआ [illegible] और जानता था कि वह अगर सार्त्र [illegible] 'आइडन्स डन द सोल' सार्त्र ने भोगा भी था और [illegible] किया था, पर सुकुमार ने केवल भोगा भर था।

इस सार्त्र [illegible] जानता था···आत्मा में चुभ रही लोहे की नोक की तरह जानता था। और इस चुभन की पीड़ा से व्याकुल हो सुकुमार ने सोचा कि उसे एक ऐसी औरत की जरूरत थी जो न उसकी बहिन हो सकती थी, न बीवी, वह केवल 'सिमन' हो सकती थी···सार्त्र की जिन्दगी में जिन्दगी भर के लिए आई 'सिमन' जो सार्त्र की जिन्दगी के एकदम भीतर भी थी और बिलकुल बाहर भी। और जिसका अस्तित्व सार्त्र का 'सब कुछ भी था और 'कुछ भी नहीं' भी था।

"यह 'कुछ' बहुत जरूरी है"—सुकुमार ने कीर्ति को लिखा—"क्योंकि यह एक आदमी के कदमों को आगे बढ़ाने वाली जुम्बिश है। और यह सिला भी बहुत जरूरी है क्योंकि इसके बिना सब कुछ महदूद हो जाता है और आदमी के पास कोई ऐसा स्थान नहीं बच रहता जहां वह जिन्दगी के तजुर्बे और ज्ञान को रख सके···" और सुकुमार ने कीर्ति को लिखा—"विवाह का सवाल पैदा नहीं होता। केवल साथ का सवाल पैदा होता है। यह सवाल मैं तुम्हारे सामने रखता हूं, अगर बन सके तो जवाब जरूर देना।"

'मर्दों और औरतों के जिस्म बासों के जगल की तरह होते हैं'—सुकुमार ने कीर्ति को खत लिखने के बाद सोचा—'आग कहीं बाहर से नहीं आती, बासों की रगड़ में से ही पैदा हो जाती है। और आज अगर मानों बात सुकुमार और कीर्ति की वाकफियत, बासों की तरह टकरा, आग बन भड़क उठी है, और अगर उसका पहला, वह बहिन-भाई का रिश्ता, उसमें जल खत्म हो गया है, तो यह स्वाभाविक है।'

'कुकनूस के पखों को लगने वाली आग भी कहीं बाहर से नहीं आती'—सुकुमार के भीतर जैसे कुछ थिरक उठा—'बहार के सफेद फूलों को देख उसके गले में जो व्याकुलता उठती है, वही व्याकुलता आग की लपट बन जाती है···इस आग में कुछ जलना जरूरी है।'—और सुकुमार को लगा कि पुराने सस्कार जलकर राख हुए जा रहे थे, और यूनानी मिथ के अनुसार राख में से एक नया कुकनूस जन्म ले रहा था—यह नया कुकनूस कीर्ति का वह रूप था—एक औरत का वह रूप—जिसे पीने के लिए उस दिन सुकुमार ने अपने होंठ आगे बढ़ा दिए।

कीर्ति बहुत दूर थी। कल्पना बिल्कुल पास। सुकुमार ने दोनों बाहें फैला, जो कुछ उनमें समा सकता था, भर लिया। अपने होठों से, कीर्ति के होठों को छू लेने वाला, वह पल था जो लम्बा होता जा रहा था—या शायद एक ही जगह ठहर गया था—सुकुमार के होंठ थक गए, और सुकुमार को लगा कि कीर्ति के होंठ भी इस बीच नीले पड़ चले थे···

दो दिन बाद कीर्ति का खत आया—भीचे-तने हुए नीले होठों में से फड़कते हुए शब्दों से भरा। कीर्ति ने अपने सपने में सुकुमार का सब कुछ, शायद कुछ इस तरह छुआ था, कि खत लिखते वक्त भी उसके हाथों में उसके शरीर का कपन जैसे कागज पर उतर आया था। सपने का एक-एक शब्द उसने लिख भेजा था। केवल उन शब्दों के स्थान पर, जो बहुत सकोचशील हो उठे थे, उसने बिन्दु डाल दिए थे—शब्द जैसे सिकुड़ गए थे। केवल बिन्दु बनकर रह गए थे···

पाच दिन भी नहीं गुजरे थे—कीर्ति का खत आया। इस लिफाफे में सिर्फ एक राखी तरह ही जिस तरह हर साल कीर्ति उसे

राखी भेजा करती थी। अभी-अभी डाकिया खत देकर गया था, अभी-अभी फिर बाहर का दरवाजा खटखटाया गया। सुकुमार ने दरवाजा खोला - एक लड़की खड़ी थी, उसके साथ भी [illegible] थी, जिसे सुकुमार की मदद से कालिज में पढ़ने का मौका मिला था, और जो बतौर [illegible] इस साल सुकुमार को राखी बांधने आया करती थी, और दूसरी लड़की उसके एक हाथ में थाली भी भरी थी। दोनों ने मिठाई का एक-एक टुकड़ा सुकुमार के मुंह में डाला और फिर उसके हाथ पर अपनी-अपनी राखी बांध दी। मेज पर कीर्ति का भेजा हुआ पहले आया लिफाफा पड़ा हुआ था। लड़की ने देखा और कीर्ति की तरफ से उस लिफाफे वाली राखी भी सुकुमार की बांह पर बांध दी।

'जिस रिश्ते को कीर्ति ने खत्म कर दिया, खत्म कर देना मान लिया, उसकी निशानी उसने क्यों भेजी?'—सुकुमार जब अकेला रह गया तो सोचने लगा, और सोचते-सोचते उसे लगा कि कीर्त्ति किसी भी पकड़ में से स्वतंत्र हो, अपने सहज रूप में खिलने के स्थान पर, इकहरी पकड़ की बजाय दुहरी पकड़ में बंध गई हो गई थी, और उसी तरह ही सिकुड़ गई थी जैसे पिछले खत में उसके शब्द सिकुड़कर बिन्दु मात्र र[ह] गए थे···इन्सानी रिश्तों की दुहरी पकड़ में बंधी कीर्त्ति ने सुकुमार के जलते खत के जवाब में एक वैसा ही खत लिख दिया था, और व्यवहार तथा संस्कारों की एक ठंडी रस्म के जवाब में उसने लाल धागे का एक ठंडा टुकड़ा भेज दिया था···

पिछले कुछ दिनों से सुकुमार, शाम के धुंधलके में, कीर्त्ति को अप[ने] करीब महसूस करने का आदी हो गया था—पतली नाजुक-सी कीर्त्ति कभी सुकुमार की बिखरी किताबों को अलमारी में सजाकर रख रही होती··· कभी सुकुमार के, किताबों में से अभी-अभी लिए गए नोट्स' टाइप क[र] रही होती·· कभी सुकुमार की कुर्सी के पाये के पास घुटनों के बल बै[ठ] उसकी टांगों पर सिर टिका देती···और कभी सुकुमार द्वारा चूमे ग[ए] अपने होंठों को धीरे से शीशे में देखती·· और कभी धीमे से सुकुमार [के] बिस्तर में सरक उस दिन दुनिया-भर में हुए हादसों को कितने [ही] अखबारों में से पढ़कर सुनाती, और उनपर बहस करती···और फि[र]

हिरानी रात की ठडक मे कापती, सुकुमार की बाहो मे गुच्छा हुई सुलग उठी···

बाजू से बधे लाल-पीले धागो को खोल, जब सुकुमार अपने बिस्तर पर लेटा, उस दिन भी रोज की तरह उसने कीर्ति को याद किया। कीर्ति नींद मे उसकी बाहों मे आ गई—आई नही ढलक-सी पडी। कीर्ति के गिर्द लिपटी हुई अपनी बाहे सुकुमार ने कसनी चाही, बाहे बेजान-सी हो गईं। कीर्ति का सिर सुकुमार के कधे से सटा हुआ था—सटा हुआ नहीं—गिरा-सा। सुकुमार ने होठ आगे बढा कीर्ति के होठो को छूना चाहा—होठ मास के जिन्दा धडकते टुकडे की तरह नही—एक चीज की तरह शिथिल थे। और फिर सुकुमार ने कीर्ति के अगो को नही, अपने अगों को जगाना चाहा, पर सुकुमार को लगा कि आज उसके अपने अग भी उसके जिस्म मे से उभरे हुए जिस्म का हिस्सा नही थे, जिस्म से टाके हुए कुछ टुकडो की तरह थे···

और सुकुमार ने परेशान हो सोचा कि आज की रात—आज की रात वह वारों-त्योहारो तथा सस्कारो से स्वतन्त्र एक सहज मर्द नही था, आज वह वारों-त्योहारों और सस्कारों के चौखटे मे कसा हुआ 'भाई' नाम का जीव था। आज वह खुद भी चौखटे मे जडी हुई एक तस्वीर की तरह दीवार पर टगा हुआ था, और सामने कीर्ति भी एक चौखटे मे कसी हुई कागज की तस्वीर-सी दीवार पर टगी हुई थी···

दीवारो, तस्वीरो और चौखटो मे से निकल सुकुमार कही चला जाना चाहता था, कीर्ति को भी ले जाना चाहता था। पर जैसे-जैसे वह सोचता जा रहा था, उसे लग रहा था कि तस्वीर को फाडा जा सकता है, तस्वीर को बोलने वाले होठो मे नही बदला जा सकता। चौखटे को तोडा जा सकता है, उसे चलकर कही जाने वाले कदम नही बनाया जा सकता। दीवार को गिराया जा सकता है, पर दीवार को किसी मजिल का रास्ता नही बनाया जा सकता···

कुछ दिनो बाद कीर्ति का खत आया कि उसकी मा और उसके भाई ने उसके विवाह का फैसला कर लिया था। वह न अपनी मा को नाराज कर सकती थी, न अपने भाई को। और उसने सुकुमार से सदा के लिए

बिल्कुल वैसे ही आई थीं। सुकुमार ने हंसकर एक खत लिख दिया—बिल्कुल वैसा ही जैसा कीर्ति ने चाहा था।

यह सब एक दुखान्त था—जो शरीर के जरिए सुकुमार के अंगों और सांसों का सम्बन्ध में लिपट गया था। पर वह सोच रहा था, 'यह दुखान्त एक आम और सीधे-सादे दुखान्त जैसा नहीं था—इश्क की नाकामी जैसा अत्याचारवाला कुछ भी नहीं हुआ था—पर फिर भी वह हो गया था, एक अजीब दुखान्त सा हो गया था। और उसका सबसे अजीब पहलू यह था कि यह एक लड़की कीर्ति की सूरत में से नहीं उभरा था बल्कि हर लड़की की सूरत में से उभर आया था और उसे लग रहा था कि भविष्य में भी उसके जीवन में आने वाली हर लड़की कीर्ति की तरह बोलेगी, कीर्ति की तरह सुनेगी और फिर कीर्ति की तरह ही चली जाएगी…

ज़िन्दगी के अर्थों को वह सार्त्र की तरह ही पकड़ने की कोशिश कर रहा था और उसे लगा कि वह सार्त्र जैसा नहीं था, वह खुद सार्त्र था…

वह स्वतन्त्र था—किसी भी ऐसी थ्योरी को ढूंढ़ निकालने के लिए स्वतन्त्र था जो समूचे सामाजिक तथा राजनीतिक ढांचे को कोई अर्थ दे सकती थी। और वह मर्द और औरत के उस रिश्ते की बुनियाद को भी जान लेने के लिए स्वतन्त्र था, जिसे वेदों से लेकर कामशास्त्र तक कइयों ने जानने की कोशिश की थी, पर वे अभी तक कुछ नहीं जान सके थे। और सुकुमार को लगा कि उसकी स्वतन्त्रता निराकार थी। स्वतन्त्रता के प्रयोग के लिए और उसे छूकर, हाथ लगाकर, देख सकने के लिए, उसका एक आकार चाहिए…

और सुकुमार को लगा कि उसमें और सार्त्र में एक फर्क था—सार्त्र के पास अपनी स्वतन्त्रता को आकार दे सकने के लिए दो हथियार थे—एक उसकी कलम और दूसरा उसकी दोस्त औरत। पर उसके अपने पास कोई भी हथियार नहीं था, और यही फर्क उसका दुखान्त था…

'भयानक दुखान्त' सुकुमार रो नहीं सकता था, इसलिए हंस दिया। और उसका मन हुआ कि वह इस भयानक दुखान्त से एक भयानक मज़ाक करे…

कितनी देर तक उसके मन का पानी खौलता रहा। कमरे में एक कोने

से दूसरे कोने तक और दूसरे कोने से फिर पहले कोने तक आते-जाते हर बार सुकुमार का ध्यान उस छोटे-से शीशे पर पड़ा जो दीवार के एक कोने में खड़ा बार-बार उसके साये को पकड़ने की कोशिश कर रहा था। और फिर एक बार सुकुमार के कदम रुक गए—शीशा जैसे उसके साये को पकड़ पाने में सफल हो गया हो।

उसने शीशे में झाँका और अपने भयानक दुखान्त को एक भयानक मज़ाक करना चाहा। खोल-खोलकर सूख चुके पानी की तरह उसे अपने सामने कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। मन में सूख चुके पानी की एक सफेद और मर्म तह जमी हुई थी—होठों की तरह हौले से फड़कती। और उसे लगा, वह अपनी ओर देखकर स्वयं से कह रहा था—सो माई डियर …यू आर सार्त्र…सार्त्र होशियारपुरी…

ए रॉटन स्टोरी

देश में दालों की रोज बढ़ती कीमत का कारण—दालों की स्मगलिंग। इन दिनों दालों की भरी ग्यारह सौ लारियां सिर्फ मध्य प्रदेश से और इतनी ही देश के बाकी हिस्सों से चोरी-चोरी चीन पहुंचाई गईं···

इंडो-पाक बार्डर की सिक्युरिटी फोर्स के वायरलैस आपरेटर की गिरफ्तारी। उसके पास से स्मगलिंग की ७५ किलो अफीम, जापानी लिपस्टिकों के ४२ बैग और ३८ रिवाल्वर बरामद हुए···

सड़कों पर सोए हुए बेघर लोगों में से कल रात की सर्दी से छः आदमी मरे हुए मिले···

नई दिल्ली के रेलवे स्टेशन के साथ वाले स्लम्स में से कोई दो हज़ार लोगों को ट्रकों में डाल नांगलोई गांव के नजदीक छोड़ दिया गया। इनमें बूढ़े और अपाहिज लोग भी हैं और गर्भवती औरतें भी। वर्षा, आंधी और बीमारी से यहां कोई बचाव नहीं···

यह पता नहीं कैसा अखबार था, जो पढ़ रहा था। पर किसी खबर पर कोई तारीख पड़ी हुई थी, किसी पर कोई···और फिर मुझे लगा कि यह अखबार नहीं था, ये कई कतरनें कई अखबारों में से निकलकर मेरे शरीर पर चिपक गई थीं···

शरीर चिपचिप कर रहा था, मैं खुले पानी से नहाना चाहता था। जानता था कि दूसरी छत पर मेरे गुसलखाने में पानी की बूंद भी नहीं आती थी, फिर भी नल की टूंटी की ओर मैंने ऐसे देखा जैसे कोई आशिक

अपनी माशूका की ओर देखना है। पर मेरी माशूका ने एक विवाहिता की तरह आँखें झुका लीं। न जाने शर्म में या अपने खाविंद के डर में। आखिर कार्पोरेशन का महकमा ही उसका मालिक था, मैं उसका कौन था···

नीचे की मंज़िल पर मालिक-मकान रहते हैं, उनकी साँकल खड़का, पानी माँगना भी कार्पोरेशन के दफ्तर में दरख्वास्त देने के बराबर है। मैं हाथ में बाल्टी पकड़ गली के नल की ओर चल पड़ा। पर आखिर तक पहुँचने की आवश्यकता नहीं थी, बाल्टियों के 'क्यू' के पास ठिठक गया। नल की टूटी में से टप्···टप्·· गिरते पानी की ओर देख चाय की दुकान वाली बनिया माथे पर हाथ मारकर कह रही थी, "हाय री मैया! इससे जल्दी तो हमारे आँसुओं से मटका भर जाए ··"

मुझे लगा—मुझे अपने नहाने का ख्याल मुल्तवी करना पड़ेगा। कल-परसों तक नहीं, शायद कार्पोरेशन के अगले इलेक्शन तक ··

छोटा था, चौथी-पाँचवीं का इम्तिहान देने जब भी जाता था, तो माँ खिचड़ी और दही खिलाकर भेजा करती थी। जब तक जीवित रही, स्कूलों और कालेजों की डिगरियों के शगुन मनाती रही। पर जब एम० ए० तक पहुँचा, वह जीवित नहीं थी, इसलिए उस इम्तिहान वाले दिन यह शगुन नहीं हुआ था, पर पिछले शगुनों का असर शायद बाकी था, मुझे एम० ए० में भी फर्स्ट डिवीज़न मिल गई थी—फिर मेरा ख्याल है उसके पिछले शगुनों का असर खत्म हो गया, नौकरी नहीं मिली। आज मेरे एक दोस्त ने एक नौकरी की खबर लगाई थी, और मुझे अपने दफ्तर बुलाया था, मैं खिचड़ी-दही का तो खैर नहीं, पर नहाने का शगुन ज़रूर करना चाहता था; पर मेरे शहर की कार्पोरेशन को मेरा यह शगुन भी मंज़ूर नहीं था, इसलिए सुराही में रह गए थोड़े-से पानी में से आधे के साथ मैंने मुँह-हाथ धोया और आधे से डेढ़ कप चाय बना-पी उसके दफ्तर चला गया। दोस्त कमरे में से बाहर आकर मिला, और फिर थोड़ा हटकर एक ओर को ले जाते हुए कहने लगा, "वह दाईं ओर, गेट के पास, कार-पार्क है।"

"मेरे पास तो अभी साइकल भी नहीं, तुम मुझे कार-पार्क किसलिए दिखाते हो?" मुझे हँसी आ गई।

[illegible] आने से पहले, [illegible] साथ लाता है, [illegible] पाक कर दे…"

[illegible] देखा, [illegible] मस्ती में [illegible] कोई कन्या [illegible] गिर पड़ी। और फिर [illegible] "अब फिर [illegible] हो अन्दर आ जाना, कि [illegible] दिया हुआ।"

"[illegible]? क्या मतलब?" मैंने पूछा।

"पहले [illegible] क्लर्क था, फिर हेड क्लर्क था, फिर सेक्शन आफिसर था, फिर… अब साल समझ ले, क्लर्क से लेकर डायरेक्टर जनरल तक… कुछ दिन एक कमरे में गुजारा करना, फिर हिम्मत कर कमरा बदल लेना, और फिर हिम्मत कर…"

"तुम्हारे दफ्तर की कैन्टीन में चाय की जगह भंग तो नहीं पिलाते? मुझे आज अगर नौकरी मिल भी गई, तो मुझसे कई सीनियर लोग अगली जगहों के लिए इन्तजार कर रहे होंगे…" यही कह सकता था, कह दिया।

"यार तू बात नहीं समझता, इन्तजार करनेवाले इन्तजार करते रहेंगे, तुम जरा ओवरटेक कर लेना।"

पास से एक लड़की गुजर रही थी, दोस्त ने हाथ के इशारे से तो नहीं, पर नजर के इशारे से कहा—"यह साली अभी हाल ही में आई है, तीन-चार महीने हुए हैं, घंटे में एक सफा टाइप करती थी, और एक सफे में सत्तर गलतियां, और अब डी० जी० की पी० ए० बन गई है—और इस महीने अपने भाई को भी नौकरी ले दी है—पर उसका नुस्खा तुम्हारे काम नहीं आ सकता, वह सिर्फ लड़कियों के काम आता है…"

"बकवास बन्द कर…"

"तुम्हें तरक्की करने के नुस्खे सिखा रहा हूं…"

"उसे भी यह नुस्खा तूने ही बताया था?"

"मैंने तो नहीं, पर किसी मेरे जैसे ने ही बताया होगा।"

मैं अपने इस दोस्त को बड़े सालों बाद मिला था, इस शहर में उसकी हाल ही में बदली हुई थी, और वह भी अचानक एक दुकान पर उससे

मेरी मुलाकात हो गई थी। हाल-चाल पूछते हुए मेरी बेरोज़गारी का पता चला तो चार दिनों में ही उसने मुझे ख़त लिख अपने दफ़्तर बुला लिया था···

"क्या सोच रहा है ?"

"तुम्हें, जब तू मेरे साथ कालेज में पढ़ा करता था।"

"और तेरे साथ मिलकर देश की आज़ादी के नारे लगाया करता था, भारत के नौजवानो ! आगे बढ़ो"—और वह फटे दूध की तरह हंस दिया। दूध के कुछ टुकड़े-से अलग हो गए थे और पानी-सा अलग। और फिर उसने पानी छानते हुए कहा, "लगता है तू अभी वहीं का वहीं खड़ा है, वही अशोक—अशोक के ज़माने वाला, मुझे मालूम है इस तरह आदमी स्टैगनैंट हो जाता है।"

"मैं यहां तक नहीं उतर सकूंगा···"

"मैं सीढ़ी रख दूंगा।"

"सीढ़ी चढ़ने के लिए होती है।"

"असूलों पर से उतरने के लिए, तरक्की पर चढ़ने के लिए···"

"तुमने मुझे यही बताने के लिए बुलाया था ?"

"मैंने तेरे साथ नौकरी का इकरार किया है, सो इकरार के बदले एक इकरार···"

"मैं पूरी मेहनत से काम करने का इकरार···"

"काम को मार गोली, सरकारी दफ़्तरों में काम को कौन पूछता है ? तू बात नहीं समझता···"

वह ठीक कह रहा था, मैं बिल्कुल बात को समझ नहीं रहा था। उसने समझाने की कोशिश की, "हमारे बड़े साहब का भाई अगले महीने यूरोप से वापस आ रहा है, तेरा कदर-दान-सा कस्टम में लगा हुआ है, बस उसे इतना कह देना कि ज़रा ध्यान रखे, और वहां कस्टम पर साहब के भाई को कोई तकलीफ़ न हो··· मैं साहब को कहकर तुम्हें इस महीने अपाइंटमेंट लैटर···"

सचमुच कुछ बातें ऐसी हैं जो मुझे बिल्कुल समझ में नहीं आतीं। यह भी समझ में नहीं आई। इसलिए दोस्त के दफ़्तर से वापस आ गया। आने

[illegible] "इट इज ए सिम्पल बार-गेन, एंड यू डोंट अंडरस्टैंड, यू फूल···"¹ और [illegible] मुझे [illegible] [illegible] [illegible] कहता था, "मुझे सब कुछ याद है दोस्त ! वे दिन भी याद हैं [illegible] मिलकर [illegible] निकाले थे, सारे [illegible]···" [illegible] था, जवाब दिया था, "और वह कहानी आज [illegible]!" फिर वह [illegible] था, "कैसे हुए, दूध जैसी हंसी, और [illegible] था, "इट इज ए सिम्पल स्टोरी···"² जवाब में एक ही बात [illegible] आ गया, "इट इज ए रॉटन स्टोरी।"³

उस वक्त उन्हीं पैरों, अपने कमरे में जाने की हिम्मत नहीं हुई—वहां मुझे एक रुपया फी सफे के हिसाब से किसी किताब का अनुवाद करना था। कल ही पता चला था कि पांच रुपये फी सफे के हिसाब से जिसे इस किताब का ठेका मिला था, उसने तीन रुपये फी सफे के हिसाब से आगे किसी जरूरतमंद को सौंप दिया था, और उस जरूरतमंद के पास आजकल कुछ कम फुर्सत थी इसलिए उसने दो रुपये फी सफे के हिसाब से वह आगे किसी ज्यादा जरूरतमंद को सौंप दिया था, और उस अधिक जरूरतमंद ने दियानतदारी से माथा-पच्ची करने की जगह एक रुपया फी सफे के हिसाब से वह आगे किसी मुझ जैसे ज्यादा जरूरतमंद को सौप दिया था···

जरूरतमंदों का हिसाब बहुत ही लम्बा था, इस वक्त न तो तर्जुमा करने की हिम्मत थी और न ही हिसाब। इसलिए कमरे में जाने की भी हिम्मत नहीं थी। और फिर याद आया—परसों किसीने बताया था कि केवल, मेरा दोस्त, बहुत दिनों से बीमार है···पता नहीं उसकी मिज़ाज-पुर्सी करने के लिए या अपनी मिज़ाजपुर्सी करवाने के लिए, मैं उसकी तंग गली के तंग मकान को ढूंढ़-ढांढ़ उसके पास पहुंच गया। वर्षों की क्लर्की से झुकी हुई उसकी पीठ इस वक्त कुर्सी की बेंत में नहीं चारपाई के वान में

१. यह सिर्फ एक मामूली-सा सौदा है, और तुम इसे समझते नहीं, तुम बेवकूफ···
२. यह एक मामूली-सी सीधी-सादी कहानी है।
३. यह तो एक सड़ी हुई कहानी है।

धंसी हुई थी। वह जब किसी दोस्त का हाथ पकड़ता था, लगता था जैसे वह एक होल्डर पकड़ रहा हो। पर आज मुझे इससे बिल्कुल उल्टी बात लगी—महीनों के बुखार से तुड़ा-मुड़ा हाथ, जब मेरे हाथ से मिलाने के लिए उसने चारपाई की बाहों से आगे किया, मुझे लगा, जैसे मैं लकड़ी का होल्डर पकड़ रहा था।

"तुम्हें मालूम है, शेक्सपीयर ने सात दिनों में दुनिया बनाई थी," उसने धीरे से कहा। उसके होंठ अधिक नहीं हिल रहे थे, पर उसकी आंखें हिली हुई थीं। जैसे शेक्सपीयर की बनाई हुई दुनिया की परछाईं उसकी आंखों में पड़ रही हो।

"पहले दिन उसने स्वर्ग बनाया, पर्वत बनाए और रूह का आकाश बनाया..."

"फिर?" मुझे हंसी सी आ गई, और मैंने उसके लकड़ी के होल्डर जैसे हाथ को एक बार फिर अपने हाथ में दबाया।

"दूसरे दिन उसने दरिया, समुद्र और ऐसी ही एक चीज़ इश्क बनाए—और यह सब कुछ हैमलेट, जूलियस सीज़र, एंटोनी, क्लियोपेट्रा और आफीलिया के नामों में घोल दिया और ओथेलो के नामों में भी..."

मैं कुछ नहीं बोला, पर मेरे होंठों पर आई मेरी हंसी छिल-सी गई।

"तीसरे दिन उसने कुछ आंसू इकट्ठा किया, और उसे चाहत मिलाई—दुःख के लिए, मुहब्बत के लिए और कुछ कर गुज़रने के लिए। ईर्ष्या का खट्टा स्वाद भी उसने लोगों को चखाया, और उदासी का कड़वा घूंट भी उसने लोगों को पिलाया, हर चाहत... सिर्फ जो लोग बहुत देर से आए थे, और जिनके आने से पहले वह हर चाहत बांट चुका था, उनसे उसने कहा कि अब उसके पास बचा-खुचा सिर्फ यह रह गया था कि वह उन्हें अपने समालोचक बना देगा, और वे उम्र-भर उसकी कृतियों को कृतियां मानने से इन्कार करते रहेंगे..." वह ऐसे मुस्कराया, जैसे यह बात कहकर, उसने शेक्सपीयर के सब आलोचकों से बदला ले लिया हो।

छिपी हुई हंसी से मेरे होंठ दर्द कर रहे थे, पर उसे मुस्कराता देख कुछ राहत-सी मिली।

सोमा और मंगल का दिन उसका रोज़-कोरे का था, उठने-बैठने का। इसी दिन उसने एक सोचा, समझा और कुछ बनाया, जो राजा महा-राजाओं की परछाइयां उसके हाथ [illegible] छठे दिन उसने, जो छोटे-छोटे काम रह गए थे, वे पूरे कर दिए। विशेष-तौर भी उसने सितारों का ताज पहनाकर बिठाया और जिन्हें न पढ़े…"

"फिर सातवें दिन ?" मैं पूछ बैठा।

"सातवें दिन उसने चारों ओर देखा कि और कुछ काम बाकी रह गया था कि नहीं—और उसने देखा कि दुनिया-भर के थियेटरों ने बड़े-बड़े शेक्सपियर नाम का लेबल लगा रखा था। उतने दिन उसने मुसीबतें उठाई थीं, उसने सोचा कि आज उसे भी किसी थियेटर में जाकर आराम से बैठना चाहिए था…"

"फिर ?"

"पर वह बहुत थका हुआ था, उसने सोचा, एक झपकी ले लूं। और वह चारपाई पर लेट गया—मौत की झपकी लेने के लिए…"

मेरे होंठों पर, जहां हंसी छिन गई थी, लगा अब लहू बह रहा था।

"मैं भी बहुत थक गया हूं, शेक्सपीयर की तरह…जिन्दगी के छः दिन दुनिया बनाता रहा था—फाइलें—फाइलें…मेरी बीवी—मेरी क्लियोपेट्रा…और मेरे बच्चे…मेरे चार छोटे-छोटे ओथेलो…" उसकी आंखें जलीं भी और बुझीं भी, और फिर वह एक लम्बा-सा सांस लेते हुए कहने लगा, "पर एक क्लर्क की क्लियोपेट्रा विधवा भी हो जाती है—और उसके ओथेलो उसके यतीम…"

आगे सुना नहीं गया। उठकर कमरे में से बाहर आ गया। बाहर और रसोई के जुड़वां कोने में वह खड़ी थी। वह मुझे बाद में दिखी थी, पहले मैंने कोने में टंगी सिर्फ एक मैली धोती समझी थी। पास जाकर कहा—"भाभी !"

उसने जवाब नहीं दिया, सिर्फ धोती के पल्लू में उसने गांठ जैसा लपेटा हुआ कुछ मेरे सामने कर दिया। हाथ से टटोला—कागज़ से खड़के। कागज़ नहीं, कागज़ की कतरनें।

"आपको शायद मालूम नहीं, ये किसी को भी बताते नहीं थे—कई

बार कुछ लिखा करते थे, सिर्फ मुझे कभी सुना देते थे —अभी-अभी आज सुबह सब कुछ फाड़ दिया···"

कुछ भी नहीं कह सकता था, वापस कमरे में चला गया। पूछने लायक भी कुछ नहीं था, फिर भी उसकी ओर देखने लगा। जैसे कुछ बताना और पूछना बाकी रह गया हो—

"बहुत थक गया हूं···सातवां दिन कब आएगा···" उसने गौर से देखा। पर देख सकता था—वह मेरी ओर नहीं देख रहा था, शायद मुझसे कुछ दूर खड़े और हौले-हौले रेंग रहे सातवें दिन की ओर देख रहा था···

उसका सातवां दिन उसकी ओर रेंग रहा था। पर मेरा अभी कुछ दूर था, मुझे अभी पांचवें और छठे दिन को भी भुगतना था, इसलिए वहां से चला आया।

बाहर बड़ी सड़क पर आकर जेब में हाथ डाला, किनारों वाले दस-दस पैसों के तीन सिक्के थे, बस का पूरा किराया। आंखों ने एक बार स्कूटर की ओर देखा था, पर वे मेरी तरह समझदार थीं, इसलिए झट दूसरी ओर देखने लगी थीं। जिधर से बस आती थी। सिर्फ मेरी थकी टांगें अब भी स्कूटर की ओर देखे जा रही थीं···

"हम सबसे तुम अच्छी रहीं, खड़ी-खड़ी ने आधा स्वेटर बुन दिया···" बस का इन्तजार करती क्यू' में खड़ी एक औरत ने दूसरी से कहा, और उतरे हुए चेहरों वाले 'क्यू' में खड़े लोग एक-दूसरे की तरफ देख हंस दिए। पल-भर के लिए शायद सबकी थकावट साझी हो गई थी, इसलिए नये सिरे से बस का इन्तजार करने का सबमें दम-सा आ गया।

"कितनी देर से बस नहीं आई ?" मैंने जरा आगे खड़े हुए आदमी से पूछा। पीछे वाले शायद मेरी तरह अभी आए हों।

उसने अभी कुछ जवाब नहीं दिया था, उससे आगे खड़ी एक औरत बोल उठी, "मुझे तो इतना पता है कि जितनी देर से मैं खड़ी हूं, इतनी देर में साबित उड़द भी गल जाती है।"

एक बार फिर सभी हंस पड़े। और एक आदमी हंसते ही कहने लगा, "उड़द तो गल जाती है पर कंकड़ नहीं गलते ? लोगों को अब

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"[illegible]," एक औरत ने मुस्कराकर कहा, "बस में चढ़ना [illegible] था तो आतिशबाज़ी क्यों बन गई थी, ऊपर से मुंह लगाता है।"

सचमुच ही सबके मुंह [illegible] की तरह पथरा गए थे—और फिर और बस आती दिखाई दी। यह बस लोगों के ठिकाने नहीं, अपने ठि[illegible] रही थी, शेड से—इसलिए अधिक भरी हुई नहीं थी। [illegible] थोड़ा रास्ता ही तय करने के लिए लोगों ने मन बना लिया, और ब[illegible] चढ़ने लगे। 'क्यू' टूट गई थी, पायदान के पास किसीका पैर कुचला जा रहा था, किसीका हाथ, कि एक फटी-सी, पर हंसती हुई आवाज सु[illegible] दी, "आगे बढ़ो! —आगे बढ़ो! भारत के नौजवानो आगे बढ़ो···" [illegible] बस का कंडक्टर सवार हो चुकी सवारियों को, चढ़ने के लिए धक्के [illegible] रही सवारियों के लिए स्थान बनाने की खातिर, आगे सरकने के [illegible] कह रहा था···

आगे···कहां···कोई मंज़िल···कोई सपना···कोई सोच···और [illegible] लगा मेरा चेहरा एक सवालिया फिकरे जैसा हो गया था।

"आगे बढ़ो···आगे बढ़ो···" कंडक्टर ने सीटी की आवाज में धुन निकालने की कोशिश की और मेरा हाथ जबरदस्ती अपने गले [illegible] और उठ गया—यह आवाज कभी मेरे गले में से भी निकली थी, मे[illegible] छाती में से, और मेरी छाती जैसी जब हज़ारों छातियां थीं, और फिर [illegible] हमारी हज़ारों छातियों में से निकलकर चलते-चलते आज कंडक्टर [illegible] सीटी में कैसे पहुंच गई? होंठ धीरे-से कांपे, 'ए रॉटन स्टोरी···'—